श्री राधासर्वेश्वरो विजयते

श्री निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः

पू० सद्गुरूदेव श्री करूण दास जी महाराज के लेखों का संग्रह

# बिखरे सुमन

स्वामी श्री करुण दास जी

परम कृपालवे श्रीसद्गुरु भगवते नमो नमः

श्री राधासर्वेश्वरो विजयते — श्री निम्बार्कमहामुनीन्द्राय नमः

पू० सद्गुरुदेव श्री करुण दास जी महाराज
द्वारा 'सेवा सुख' पत्रिका में दिये लेखों का संग्रह

# बिखरे सुमन

संपादक – **किशोरी शरण**

**प्रकाशक –**
**राधा कृष्ण परिवार**
भक्ति धाम कालोनी, आन्यौर परिक्रमा मार्ग
गोवर्धन, मथुरा – 281502
(उत्तर प्रदेश)

email-**info@radhakrishanparivar.com**
website-**www.radhakrishanparivar.com**

**प्रकाशन तिथि –**
जनवरी 2016

**प्रतियाँ –** 3000

**न्यौछावर** – 60 रूपये

**मुद्रक –**
**प्रमोद प्रिन्टर्स**
मसानी तिराहा,
वृन्दावन रोड, मथुरा
(उत्तर प्रदेश)

# प्रस्तावना

पूज्य श्री महाराज जी (पूज्य श्री करुण दास जी) द्वारा अनेक विषयों पर लिखे लेख **राधा कृष्ण परिवार** द्वारा प्रकाशित '**सेवा सुख**' मासिक पत्रिका में प्रतिमाह छपते हैं। लेखों की भाषा व शैली बिल्कुल सरल होती है। लेख लिखते समय पूज्य श्री जनसाधारण को ध्यान में रखते हुए गूढ़ तथ्यों, गम्भीर भावों व तत्त्व रहस्यों को बड़ी सरलता से समझाते हैं। 'सेवा सुख' पत्रिका के श्रद्धालु पाठकगण पढ़कर बहुत सराहना करते हैं।

मेरे मन में आया कि क्यों न इन बहुमूल्य उपदेशों का पृथक रूप से प्रकाशन हो। ये उपदेश यदि पुस्तकाकार रूप में साधकों के सन्मुख प्रस्तुत किये जायें तो साधक जगत का बहुत बड़ा उपकार होगा।

इसके लिये पूज्य श्री से प्रार्थना की गई तो आपने सहर्ष अनुमति प्रदान कर दी। परिणामस्वरूप समस्त लेख दो खण्डों में आपके सन्मुख प्रस्तुत हैं।

प्रथम खण्ड **सुन सखि! प्रेम नगर की बात**, द्वितीय खण्ड **बिखरे सुमन।** प्रथम खण्ड में प्रेम तत्त्व व वृन्दावन योगपीठ का बड़ा ही सुन्दर एवं मार्मिक विवेचन हुआ है। द्वितीय खण्ड जो इस समय आपके हाथ में है, पूज्य श्री महाराज जी द्वारा अनेक विषयों पर लिखे लेखों का संग्रह है।

इन दोनों ग्रन्थों से साधकगण दुर्लभ लाभ प्राप्त करेंगे।

ऐसी मैं आशा करता हूँ।

आपकी सेवा में

सम्पादक

**– किशोरी शरण**

# विषय – सूची


| विषय | | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| 1. | श्रीराधा जन्म कथा (कल्पभेद) | 1 |
| 2. | प्रेम मूर्ति श्रीराधा रानी के परिवार जनों का परिचय | 6 |
| 3. | अजन्मा का जन्म | 10 |
| 4. | मनुष्य, देवता व भगवान् के शरीर में अंतर | 14 |
| 5. | पुराणों में हरि, राम व कृष्ण नाम की अद्भुत महिमा | 18 |
| 6. | भक्तों के नाम भगवान् का पत्र | 24 |
| 7. | मैं काल हूँ लेकिन प्राकृत नहीं | 30 |
| 8. | भजन – चिंतन व सद्गुणों का विकास | 34 |
| 9. | निकुंज में होली रस विलास | 39 |
| 10. | कन्हैया! सुनो हमारी बात | 43 |
| 11. | कृष्ण कृपा कूँ करहुँ प्रणाम | 46 |
| 12. | सेवा – सुख | 51 |
| 13. | एक प्रेमी भक्ता को लिखा पूज्य श्री का पत्र | 53 |
| 14. | अद्भुत संत श्री सरकार जू का निकुंज प्रवेश | 58 |
| 15. | चातुर्मास व्रत एवं महात्म्य | 72 |
| 16. | कार्तिक मास व्रत (मासोपवास) महिमा | 76 |
| 17. | भक्त की रक्षा की जिम्मेदारी भगवान् पर होती है | 86 |
| 18. | सद्शिष्य और गुरुभक्ति | 91 |
| 19. | भीड़ और भार | 95 |
| 20. | लुटने से बचें | 100 |
| 21. | विवाह के लिए जन्मकुण्डली मिलान कहाँ तक उचित? | 103 |
| 22. | जन्मदिन मनायें – पेड़ लगाकर | 105 |
| 23. | दु:ख का कारण कौन? | 107 |
| 24. | सत्संग के रूप में आये कुसंग से बचें | 111 |
| 25. | 72 घंटे तक रहता है गुस्से का असर | 115 |
| 26. | उपदेशामृत | 118 |

# श्रीराधा जन्म कथा (कल्पभेद)

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक, परात्पर परब्रह्म, जगदाधार जगन्नियन्ता, सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की स्वरूपभूता अह्लादिनी शक्ति महाभावस्वरूपा श्रीराधा रानी के दिव्यातिदिव्य परम पावन जन्म की कथा तो प्रायः सभी भक्तों ने पढ़ी-सुनी होगी। ब्रजमण्डल में रावल गाँव के पास से बहती श्रीयमुना में कमल पुष्प से श्रीराधा रानी के प्राकट्य की कथा प्रायः सभी जानते हैं। यही कथा जन साधारण में प्रचलित भी है। वृन्दावन की रास मण्डलियाँ भी रासलीला के मंच पर श्रीराधा रानी के इसी जन्म प्रसंग का ही मंचन करती हैं।

अब मैं श्रीराधा रानी के जन्म की जो कथा बताने जा रहा हूँ, वह इस प्रचलित कथा से अलग प्रकार की है। इस कथा को सुनकर कोई आश्चर्य न करे और न ही अन्यथा समझे क्योंकि कल्पभेद के कारण भगवान् की लीलाओं में भेद हो जाता है।

कल्पभेद क्या है? पहले इसको समझ लेना आवश्यक है। परमात्मा और अनन्तानन्त आत्माओं की तरह यह माया सृष्टि भी अनादि एवं अविनाशी तत्त्व है। यह सृष्टि अनादि काल से चल रही है और अनन्त काल तक चलती रहेगी।

**न अन्तो न च आदिः** (गीता 15/3)

इस सृष्टि का आदि और अन्त नहीं है। सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद फिर सृष्टि। इस तरह दिन-रात की तरह यह सृष्टि अनन्त काल तक चलती रहेगी। एक सृष्टि की समय अवधि को कल्प कहते हैं। एक कल्प में चारों युग (सत, त्रेता, द्वापर व कलि) एक हजार बार बीत जाते हैं। चारों युगों की आयु तैंतालीस लाख बीस हजार (4,320000) वर्ष होती है। इस प्रकार एक कल्प में चार अरब बत्तीस करोड़ (4,320000000) वर्ष होते हैं। यही सृष्टि की समय अवधि है। इतने समय की ही प्रलय भी होती है। कल्प को ब्रह्मा का दिन, प्रलय को ब्रह्मा की रात्रि कहते हैं। ब्रह्मा के प्रत्येक दिन अर्थात् प्रत्येक कल्प में एक बार भगवान् श्रीराम व एक ही बार भगवान् श्रीकृष्ण इस सृष्टि में अवतरित होते हैं। एक कल्प के चार सौ साठवें त्रेतायुग में श्रीराम व चार सौ साठवें

द्वापर युग में श्रीकृष्ण का इस धराधाम पर प्राकट्य होता रहता है।

ब्रह्मा जी की सौ वर्ष की सम्पूर्ण आयु में भगवान् श्रीराम व श्रीकृष्ण इस भूलोक में छत्तीस हजार बार अवतार लेते हैं। इन्हीं ब्रह्मा जी के होते अब तक अठ्ठारह हजार बार श्रीराम व श्रीकृष्ण का अवतार हो चुका है क्योंकि इस समय ब्रह्मा जी की आधी आयु बीत चुकी है। अभी इसी ब्रह्मा जी की शेष आयु में अठ्ठारह हजार बार ओर श्रीकृष्ण अवतार होना है। ब्रह्मा जी की आयु समाप्ति पर प्राकृतिक महाप्रलय होगी। फिर ब्रह्मा जी दोबारा पैदा होंगे। फिर इसी प्रकार पूर्ववत् सृष्टि क्रम चलेगा और इसी प्रकार ब्रह्मा जी के प्रत्येक दिन (कल्प) में कृष्णावतार होगा। इस प्रकार अनादि काल से लेकर अब तक भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्त अवतार हो चुके हैं और आगे भी अनन्त अवतार होते रहेंगे।

प्रत्येक बार अवतार लीलाएँ प्रायः एक जैसी ही होती हैं। कभी-कभी किसी कारण विशेष से किसी-किसी लीला में थोड़ा बहुत भेद (अन्तर) हो जाता है। इसी भेद को ऋषि, मुनियों व सद्ग्रन्थों ने 'कल्पभेद' कहा है।

इसलिये गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी रामचरितमानस में श्रीराम कथा से पहले कल्पभेद की चर्चा करते हैं जिससे भक्तों को राम कथा के सम्बन्ध में कोई शंका न हो।

**कलप भेद हरि चरित सुहाए । भांति अनेक मुनिसन गाए ।।**

कल्पभेद के अनुसार श्रीहरि के सुंदर चरित्रों को मुनीश्वरों ने अनेकों प्रकार से गाया।

**करिय न संसय अस पुर आनी । सुनिए कथा सादर उर आनी ।।**

हृदय में ऐसा विचारकर संदेह न कीजिए। आदरसहित प्रेम से इस कथा को सुनिए।

**जेहि यह कथा सुनी नहि होई । जनि आचरजु करे सुनि सोई ।।**

जिसने यह कथा पहले न सुनी हो, इसे सुनकर वह आश्चर्य न करे।

**कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं । चारु चरित नाना विधि करहीं ।।**

**तब तब कथा मुनि सन गाई । परम पुनीत प्रबन्ध बनाई ।।**

प्रत्येक कल्प में जब-जब भगवान् अवतार लेते हैं और नाना प्रकार की सुन्दर लीलाएँ करते हैं, तब-तब मुनीश्वरों ने परम पवित्र काव्य रचना करके उनकी कथाओं का गान किया है।

अब आप समझ गये होंगे कि ये कल्प भेद क्या है। इसलिये श्रीराधा रानी के जन्म की इस कथा को सुनकर संशय न करें। इसको कल्पभेद की कथा मानकर हृदयंगम करें।

ग्यारह सौ ग्यारह छन्दों का ग्यारह शतकों में विभाजित 'प्रियतम काव्य' नामक ग्रन्थ का प्रथम छन्द जब पूज्य श्रीराधा बाबा के अन्त:करण में अवतरित हुआ तब उन्हें यह भासित होने लगा मानो उनके प्रियतम श्रीकृष्ण काव्य रूप में कुछ लिखवाना चाहते हैं। उस समय पूज्य श्रीराधा बाबा ने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से विनय की-'यदि आप कुछ लिखवाना चाहते हैं तो वही लिखवाना जो पहले किसी ने न लिखा हो। यदि पूर्व के रसिकाचार्यों एवं भक्त कवियों से मेरी यह रचना कुछ अपूर्व हो तब तो इसकी सार्थकता है अन्यथा यह खाये को दुबारा खाने जैसी ही होगी।'

पूज्य श्रीराधा बाबा का निवेदन सुनकर प्रियतम श्रीकृष्ण ने मुस्कुराकर कहा-'तू इसे प्रकट तो कर। तुम्हारे द्वारा लिखा यह काव्य उन सभी रचनाओं से अपूर्व ही होगा। इस घोर कलिकाल में तुम्हारी यह रचना मेरी प्रीति के लिये अप्राकृत अन्त:करण के निर्माण में निश्चय की कारण होगी एवं भविष्य में पच्चीस सौ वर्षों तक इसका प्रभाव स्थाई रहेगा।'

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा लिखवाए व पूज्य श्रीराधा बाबा द्वारा लिखे 'प्रियतम काव्य' ग्रन्थ से ही श्रीराधा रानी के जन्म प्रसंग को लिया गया है।

## श्री राधा जन्म कथा

मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टमी को प्रात:काल महारानी कीर्ति (श्रीराधा रानी की माता) अपनी कुलदेवी महामाया श्रीत्रिपुरसुन्दरी के मन्दिर में

नित्य की भाँति महादेवी की सेवा-पूजा के लिये गयीं। फिर श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी के चरणों में समर्पित किये हुए पूजा के पुष्पों को उठाकर श्रद्धा व सम्मान पूर्वक नेत्रों से लगा-लगाकर उन्हें किसी सरोवर या बहते जल में विसर्जित करने के लिये रख रही थीं। अभी महादेवी की अर्चना करने महाराज वृषभानु (श्रीराधा रानी के पिता) मन्दिर में नहीं पधारे थे। महारानी कीर्ति को आज श्रीभगवती ने साक्षात् प्रकट होकर दर्शन दिये और रानी को देखते ही मुस्कुराने लगीं। रानी के देखते-देखते श्रीभगवती का हृदय खुलने लगा जैसे द्वार पर लगे परदे दायें-बायें धीरे-धीरे सरक रहे हों।

फिर महादेवी के हृदय से एक अनिर्वचनीय सुन्दरी गौरवर्णा भोली-भाली छोटी-सी बालिका प्रकट हो गयी। महारानी कीर्ति के अत्यन्त समीप आकर उनके बालों की एक लट का स्पर्श करके बोली-'री मैया!' इस अमृत वर्षी मधुर स्वर को सुनकर महारानी कीर्ति की बाह्य चेतना लुप्त हो गई, देह तक का भान नहीं रहा। फिर भी महारानी की भीतरी आंखें वहाँ घटने वाली प्रत्येक घटना को ज्यों-की-त्यों देख रही थीं। महारानी ने देखा सामने श्रीवृन्दावन में परम रमणीय पुष्पित कदम्ब वृक्ष विराजित है। उसके नीचे परस्पर सटे युगलकिशोर विराजित हैं। उन दोनों किशोर-किशोरी की ओर ही अपनी दृष्टि केंद्रित किये वहीं साक्षात् जगदम्बा भी विराजित हैं। थोड़ी देर बात त्रिभुवन जननी भगवती त्रिपुरमहासुन्दरी ने महारानी से कहा-'हे परम सती रानी कीर्ति! आज तू मेरे हृदय का प्रत्यक्ष दर्शन कर ले और परिचय पा ले। जो सच्चिदानन्द भगवत्ता का सार, मूल तत्त्व व मधुरिमा है वह यही नील-पीत युगल छबि ही है। जानती हो महारानी जो रसमय नील-पीतमय (राधा कृष्णमय) यह मेरा नित्य हृदय है जिसमें मैं सदा लीन रहती हूँ और जो लीला रस पान करता हुआ नित्य युगल रूप में विराजित है। जो नित्य दो रहकर भी नित्य एक है, वही तत्त्व आज तुम प्रत्यक्ष अपनी आंखों से देख रही हो।

अभी-अभी यह नित्य किशोरी ही तुमसे 'री मैया!' कहकर बोली थी। तुम भविष्य की बात सुन लो, यह तेरे पयोधरों का अमृतमय

दूध पियेगी। किंतु यह घटना तभी घटेगी, जब पहले यह नित्य किशोर तुम्हारी जो प्राणसखी (यशोदा) उनका दूध पी लेगा। इस किशोर के दूध पी लेने के बाद यह किशोरी दूध पीने आयेगी। यह नित्य किशोर तेरी उस प्राणसखी के प्राणों में समाया रहता है। इधर यह नित्य किशोरी तेरे प्राणों में समाई रहती है। तुम्हारी वह प्राण सखी एवं तुम दोनों ही इन दोनों की इच्छा से इस बात को भूल गई हो। अब मैं याद करा देती हूँ।.............तुम दोनों सखियों की जय हो। जय .........

महारानी कीर्ति अब सुन! नित्य किशोरी के स्पर्श करने से दिव्यातिदिव्य सुगन्ध तुम्हारे इन केशों में भर गई है। सम्पूर्ण मन्दिर के कण–कण में यह सुगन्ध फैल गई है किंतु तुम्हें बाह्य ज्ञान न होने के कारण भान नहीं हो रहा है। पर मन्दिर के भीतर महाराज बिल्कुल तुम्हारे समीप आकर खड़े हैं। मेरी इच्छा से एक परम पवित्र संकल्प महाराज के मन में जग उठा है–ऐसी सुरभित केशों वाली एक पुत्री मुझे प्राप्त हो जाए।

'आज से नौ मास बाद यही गौर तेज तुम्हारे गर्भ से पुत्री के रूप में जन्म लेकर तुमको धन्य करेगा। मैं यह आशीर्वाद दे रही हूँ।'

इस घटना के ठीक नौ मास बाद भादों के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को मध्यान में महारानी कीर्ति की पवित्र कोख से श्रीराधा रानी अवतरित हुई। उस समय महारानी कीर्ति अपने पीहर (पिता के घर) रावल में ही थी। इसी रावल गाँव को श्रीराधारानी के जन्म स्थली होने का सौभाग्य प्राप्त है।

**एक तत्त्व भासत द्वै रूप ।**
**राधा मोहन नित नव दंपति, नित नव रूप अनूप ।।**
**दोउ कांता दोउ कांत परस्पर, कबहूँ एक स्वरूप ।**
**रूप तेज गुण मति में इक सम, करुण दास रस भूप ।।**

# प्रेम मूर्ति श्रीराधारानी के परिवार जनों का परिचय

भगवती योगमाया साक्षात् गोलोक धाम को ही ब्रज प्रदेश के रूप में इस धरा धाम पर प्रकट करती हैं। चौरासी कोस में फैले ब्रज मण्डल के अधिपति महाराज महीभानु (राधा रानी के दादा) जी थे। बरसाना (वृषभानुपुर) इनकी राजधानी थी। उन दिनों यह प्रथा थी जिनके पास नौ लाख गाएँ होती थीं उसको नन्द की उपाधि दी जाती थी और जिसके पास ग्यारह लाख से अधिक गाएँ होती थीं वह वृषभानु की उपाधि पाता था। इस प्रकार ब्रज चौरासी कोस की परिधि में कई नन्द व वृषभानु थे। सभी नन्दों व वृषभानुओं के एकछत्र राजा श्रीराधा रानी के दादा श्रीमहीभानु जी थे। जिस समय ब्रज के राजा महीभानु जी थे उसी समय मथुरा मण्डल में यदुकुल के चन्द्रवंशी महाराज शूरसेन (श्रीकृष्ण के दादा) सम्राट थे। शूरसेन के पिता देवमीढ़ जी की दो पत्नियाँ थी। एक क्षत्रिय कुल की थी जिससे शूरसेन (वसुदेव जी के पिता) का जन्म हुआ। दूसरी पत्नी वैश्य कुल की थी जिससे पर्जन्य (नन्द बाबा के पिता) का जन्म हुआ। शूरसेन के पुत्र वसुदेव जी एवं पर्जन्य के पुत्र नन्द बाबा हुए। नन्द जी व वसुदेव जी दोनों के एक ही दादा देवमीढ़ जी थे। रिश्ते में दोनों भाई – भाई थे।

बरसाना के राजा महीभानु (राधा रानी के दादा) जी एवं महाराज शूरसेन (कृष्ण के दादा) की प्रगाढ़ मित्रता थी। ब्रज गोपराज महीभानु जी पूरे मथुरा मण्डल को अपने ब्रज प्रदेश से प्रचुर मात्रा में गौ दूध, घी, मक्खन, दही एवं दूध से निर्मित छेना, मावा आदि पदार्थ निर्यात करते थे और मथुरा मण्डल से स्वर्ण, रत्न, सैन्य उपकरण, रेशमी वस्त्र एवं अन्न आदि अनेक प्रकार की सामग्री आयात करते थे। महाराज शूरसेन (श्रीकृष्ण के दादा) जी की प्रेरणा से महाराज महीभानु (श्रीराधा रानी के दादा) जी ने पर्जन्य (नन्द के पिता) जी को ब्रज के समस्त नन्दों का अधिपति बना दिया। इसी पर्जन्य के पुत्र हुए नन्दराय जी।

राधा रानी के दादा महीभानु जी आदिशक्ति त्रिपुरसुन्दरी जी के अनन्य उपासक थे। भगवती जी इनकी कुलदेवी थीं। महल में ही भगवती जी की स्वर्णमयी प्रतिमा स्वयं सूर्यदेव द्वारा स्थापित थी। महाराज महीभानु

अपनी पत्नी महारानी सुखदा सहित दिन–रात भगवती की आराधना में लीन रहते थे। अपने राज–काज का समग्र भार इन्होंने विश्वासपात्र मन्त्रियों को सौंप रखा था। महाराज महीभानु जी के चार तेजस्वी पुत्र एवं एक पुत्री थी। इनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम वृषभानुवर (राधा रानी के पिता) था। शेष तीनों के नाम क्रमश: सत्यभानु, रत्नभानु और स्वर्भानु थे। इनको राधा रानी के चाचा होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सबसे छोटी पुत्री भानुमुद्रा थी। ये राधा रानी की बुआ थी। इनका विवाह काश्यभानु गोप के साथ हुआ।

महीभानु पुत्र वृषभानुवर जी, जिनको राधा रानी के पिता होने का सौभाग्य मिला, ये पूर्व जन्म में सूर्यवंशी राजा नृग के सुपुत्र सुचन्द्र जी थे। धर्मात्मा सुचन्द्र जी व इनकी पत्नी कलावती जी ने भगवान् श्रीकृष्ण की कठोर तपस्या पूर्वक आराधना की। दम्पत्ति पर भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए तो इन्होंने श्रीराधा रानी को ही अपनी पुत्री के रूप में प्राप्त करने की अभिलाषा व्यक्त की। भगवान् श्रीकृष्ण ने उनको तथास्तु कहा एवं अगले जन्म में द्वापर युग में वृषभानु गोप के रूप में जन्म लेने पर इस अभिलाषा की पूर्ति होने का वर दिया। इनकी पत्नी कलावती ही कीर्तिदा (कीर्ति रानी) के रूप में राधा रानी की माता हुई।

पूर्व काल में अर्यमा नाम के पितरों के राजा की तीन मानसिक कन्याओं ने भगवती त्रिपुरसुन्दरी की आराधना की। प्रसन्न होकर भगवती महामाया प्रकट हुई। तीनों बहनों ने वरदान माँगा कि आपके समान दिव्य अयोनिजा कन्या की माता होने का हमको सौभाग्य प्राप्त हो। तब भगवती जी ने बड़ी बहिन मेनका (मैना) से कहा–समय आने पर तुम्हारा विवाह हिमालय से होगा। मैं स्वयं तुम्हारे यहाँ पार्वती के रूप में कन्या बनकर प्रकट होंगी। फिर दूसरी बहिन सुनैना से कहा–तुम्हारा विवाह राजा जनक से होगा। मैं ही साकेत धाम से तुम्हारे यहाँ सीता के रूप में अयोनिजा कन्या बनकर आऊँगी। अंत में तीसरी बहिन कलावती से कहा–'हे देवी! आपका विवाह महाराज नृग के पुत्र धर्मात्मा सुचन्द्र से होगा। समय आने पर तुम दोनों नित्य निकुंजेश्वरी श्रीराधा जी को अपनी पुत्री के रूप में प्राप्त करने के लिए गोलोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की

आराधना करोगे। तुम्हारी साधना को सफल करने के लिए स्वयं श्रीकृष्ण प्रकट होंगे एवं तुम्हें वरदान देंगे। उस वरदान के फल स्वरूप तुम्हारे पति महाराज सुचन्द्र तो वृषभानुपुर बरसाना के राजा महीभानु के घर महारानी सुखदा की कोख से वृषभानुवर के रूप में जन्म लेंगे एवं तुम रावल में गोप राज बिन्दु के घर यज्ञ कन्या के रूप में यज्ञागनि से प्रकट होकर महारानी मोक्षदा (मुखरा) की गोद को धन्य करोगी। तब तुम्हारा नाम कीर्तिदा के रूप में विख्यात होगा। समय आने पर तुम्हारा विवाह गोपराज वृषभानुवर से होगा। तब तुम्हारी पुत्री के रूप में स्वयं वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा जी अवतार लेंगी। उस समय तुम्हारी एक छोटी बहिन भी होगी जिसका नाम होगा कीर्तिमति। उसका विवाह वृषभानु जी के छोटे भाई सत्यभानु से होगा। उनके यहाँ भी एक कन्या होगी जिसका नाम होगा कुन्दवल्ली (कुन्दप्रिया)। वह तुम्हारी पुत्री श्रीराधा को प्राणों से भी बढ़कर प्रेम करेगी। उनका समस्त जीवन श्रीराधा पर ही न्यौछावर रहेगा।

सूर्यपुत्री श्रीयमुना जी के पश्चिम तट पर मथुरा नगरी व मथुरा से 12 कि. मी. की दूरी पर यमुना के उस पार पूर्व तट पर गोकुल गाँव बसा है। गोकुल के ही पास यमुना किनारे 8 कि. मी. की दूरी पर उत्तर की तरफ रावल गाँव बसा है। ये राधा रानी की ननिहाल (नाना का गाँव) है। रावल के राजा बिन्दु जी व रानी मोक्षदा जो मुखरा के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है ये राधा रानी के नाना – नानी है। इनकी पाँच संतानें तीन पुत्र व दो पुत्रियाँ हैं। सबसे बड़े पुत्र हैं भद्रकीर्ति, इनसे छोटे हैं महीकीर्ति और सबसे छोटे हैं चन्द्रकीर्ति। ये तीनों भाई अपनी भानजी राधा पर न्यौछावर हैं। राधा रानी के सबसे बड़े मामा भद्रकीर्ति तो अपने पिता महाराज बिन्दु जी के साथ राजकाज सम्भालने में संलग्न रहते थे। शेष दोनों भाई महीकीर्ति व चन्द्रकीर्ति अपने भानजे श्रीदामा (श्रीराधा रानी के भाई) के साथ उनके सखा श्रीकृष्ण के रक्षक बनकर गोचारण में सहयोग करते थे। भद्रकीर्ति की पत्नी मेनका, महीकीर्ति की पत्नी षष्ठी व चन्द्रकीर्ति की पत्नी धात्री हैं। ये तीनों राधा रानी की मामियाँ राधा रानी के प्रेम में रचीपची रहती थीं। दोनों छोटी मामियाँ षष्ठी व धात्री का यशोदा से अतिशय प्रेम था। शिशु अवस्था में यह दोनों श्रीकृष्ण की विशेष सम्भाल

करती एवं यशोदा जी के निजी कार्यों में हाथ बँटाया करती थीं। श्रीकृष्ण भी इनको मातृवत ही मानते थे। राधा रानी की छोटी बहिन मंजुश्यामा जी थी जिनका दूसरा नाम अनंग मंजरी था। छोटे भाई का नाम श्रीदाम था जो श्रीकृष्ण की सखा मण्डली में मुख्य था।

राधा एवं कृष्ण के दादा–दादी से लेकर कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न एवं पौत्र अनिरुद्ध तक जितने भी राधाकृष्ण के पारिवारिक जन हैं इनमें किसी के भी शरीर पंचतत्त्व के नहीं थे। सभी चिन्मय थे क्योंकि चिन्मय शरीर के बिना राधा–माधव की प्रकट लीला में प्रेम सेवा का अधिकार प्राप्त नहीं होता। यह चिन्मयत्व शूरसेन, पर्जन्य, महीभानु एवं बिन्दु से प्रारम्भ हुआ था और यह चिन्मयत्व भगवान् श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध तक रहा। इन पांच पीढ़ियों से पहले व बाद के सभी पंचतत्त्व देहधारी ही थे। जैसे भगवती राधा रानी एवं भगवान् श्रीकृष्ण चिन्मय हैं, वहाँ जड़ सत्ता लेशमात्र भी नहीं है।

**चिदानन्दमय देह तुम्हारी, विगत विकार जान अधिकारी**

ठीक वैसे ही श्रीराधा रानी के नाना– नानी, मौसा–मौसी एवं मामा–मामियाँ सभी विशुद्ध चिन्मय, प्रेममय हैं। हम लोगों की तरह इनका देह प्राकृत रक्त मांसमय नहीं है न ही ये ब्रह्मा की सृष्टि के अन्तर्गत आते हैं। श्रीवृषभानु जी उनके पिता महीभानु जी एवं महारनी सुखदा जी–सभी अप्राकृत सृष्टि ही हैं। ये सदैव ध्यान रहे कि ब्रज में उत्पन्न होने वाला लीला पात्र एक जीव भी, चाहे वो कोई कीट, पतंग ही क्यों न हो, कर्मजन्य प्रारब्ध भोगने वाला कोई साधारण जीव नहीं है। ये सभी राधाकृष्ण के लीला पात्र भाव शरीरधारी हैं, प्रेममय ही हैं। ये सभी लीलापात्र आज से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व भगवत् कृपा पात्र करके इनकी प्रेममयी लीला में अवतरित हुए।

यह पूर्ण रहस्य कुछ अंश में कभी आने वाले लेखों में खोला जाएगा।

# अजन्मा का जन्म

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी भक्तों के हृदयों में उत्साह भर देने वाला उत्सव है। अजन्मा का जन्म कोई साधारण जन्म तो हो नहीं सकता। अजन्मा का जन्म कैसा?

**अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।**
**प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ।।**

(गीता 4/6)

भगवान् कहते हैं– 'मैं अजन्मा और अविनाशी स्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्राकृति को आधीन करके अपनी योगमाया से प्रकट होता हूँ।'

परमात्मा की तरह वैसे तो आत्मा भी अजन्मा है, अविनाशी है लेकिन आत्मा अनादि काल से मायाबद्ध है।

**ईस्वर अंस जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ।।**
**सो माया बस भयउ गोसाईं । बंध्यो कीर मर्कट की नाई ।।**

ये आत्मा माया के वशीभूत होकर तोते और बन्दर की तरह आप ही बंध गया। जीवात्मा का यह अनादि बंधन है। आत्मा माया के आधीन और माया परमात्मा के आधीन है। परमात्मा परम स्वतंत्र है। '**परम स्वतंत्र न सिर पर कोई**' जीवात्मा और परमात्मा के जन्म का बहुत बड़ा अन्तर है। जीवात्मा कर्मवश माया के आधीन होकर परवश जन्म लेती है। लेकिन परमात्मा निज इच्छा से माया को आधीन करके भक्त प्रेम वश दिव्य जन्म (अवतार) लेते हैं।

**विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार ।**
**निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गोपार ।।**

जीवात्मा का शरीर माया निर्मित पंचतत्त्वात्मक जड़ होने से सबको एक सा दिखाई देता है। लेकिन भगवान् का शरीर निज इच्छा निर्मित व चिन्मय होने से भक्त के भावानुसार सबको अलग –अलग प्रकार का दिखाई देता है।

**जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति तिन देखी तैसी।**

जीवात्मा को शरीर प्रारब्ध (पूर्वकृत कर्म) के अनुसार मिलता है। प्रारब्ध भोग समाप्त होते ही शरीर छूट जाता है। भगवान् का शरीर सच्चिदानन्दमय होता है। उसमें कोई माया जनित विकार नहीं होता।

**चिदानन्दमय देह तुम्हारी, विगत विकार जान अधिकारी ।**

भगवान् का शरीर अजन्मा व अविनाशी होने से नया बनता व मिटता नहीं है। केवल प्रकट होता है और अन्तर्धान होता है। जीवात्मा अजन्मा व अविनाशी तो है लेकिन उसको प्राप्त होने वाला शरीर जन्म लेने वाला व मरण धर्मा है। जीवात्मा और उसको प्राप्त शरीर में देह-देही का भेद होता है लेकिन परमात्मा में देह (शरीर) व देही (आत्मा) का भेद नहीं होता। भगवान् का शरीर व भगवान् की आत्मा दोनों एक ही तत्त्व होते हैं, दो नहीं।

जीवात्मा को चौरासी लाख प्रकार के जड़ शरीर कर्मफल भोग के लिये मिलते हैं और मानव का शरीर कर्मफल भोग व नया कर्म करने के लिये प्राप्त होता है। चौरासी लाख प्रकार की योनियों में जीव तब तक जन्म लेता रहेगा जब तक यह अपना उद्धार न कर ले। भगवान् के आधीन होना ही मुक्ति है और माया के आधीन होना ही बंधन। भगवान् सदा से स्वतंत्र हैं, सदा स्वतंत्र रहेंगे, माया और जीवात्माएँ भगवान् के आधीन हैं।

परम स्वतंत्र, सर्वतन्त्र, अजन्मा होकर भी भगवान् जन्म क्यों लेते हैं? सुनिये इन्हीं के मुख से इनके दिव्य जन्म का रहस्य-

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।**
**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।**
**धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।**

(गीता 4/7-8)

हे अर्जुन! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अपने रूप को प्रकट करता हूँ। साधु पुरूषों का उद्धार करने के लिये, पाप कर्म करने वालों का विनाश करने के लिये और धर्म की

स्थापना करने के लिये मैं युग – युग में प्रकट होता हूँ।

मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं – '**जन्म कर्म च मे दिव्यं**' (गीता 4/9)। भगवान् के जन्म और कर्म दिव्य होने से इनके जन्म और कर्म के रहस्य को हर कोई नहीं समझ सकता। '**मां तु वेद न कश्चन**' (गीता 7/26)। मैं अपनी योगमाया से छिपा हुआ सबके सामने प्रत्यक्ष नहीं होता। '**नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः**' (गीता 7/25)। इसलिये भक्ति रहित अज्ञानीजन समुदाय मुझ जन्म रहित अविनाशी परमेश्वर को जन्मने – मरने वाला समझता है। '**मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्**' (गीता 7/25)। बुद्धिहीन पुरूष मेरे अनुपम, अविनाशी भाव को न जानते हुए मन, इन्द्रियों से परे मुझ सच्चिदानन्द परमात्मा को मनुष्य की तरह जन्म कर व्यक्ति भाव को प्राप्त हुआ मानते हैं। '**परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्**' (गीता 7/24)। अजन्मा के जन्म का रहस्य कैसे जानें? इसके लिये तो कहा है –

**वही जानेहि जेहि देही जनाई । जानहि तुमहि तुमही होइ जाई ।।**

भगवान् का रहस्य तो ठीक – ठीक वही जान सकता है, जिसको भगवान् जनाना चाहें। जो इस रहस्य को जान गया वो उन्हीं का रूप हो जाता है।

**जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।**
**त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ।।**

**(गीता 4/9)**

हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं। इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्व से जान लेता है वह शरीर को त्यागकर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता, मुझे ही प्राप्त होता है।

अजन्मा भगवान् के जन्म व कर्म के रहस्य को जानने के मुख्य दो उपाय हैं या तो भगवान् स्वयं जना दें या फिर कोई संत कृपा करे तब। तभी तो भगवान् ने कहा –

**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।**

**उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।**

**(गीता 4/34)**

हे अर्जुन! उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भली–भाँति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलता पूर्वक प्रश्न करने से वे तत्त्व का भली–भाँति जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।

श्रीतुलसीदास जी ने एक ओर सरल उपाय बताया भगवान् के गूढ़ रहस्य को जानने का – वह है जिह्वा से निरन्तर नाम जप।

**जाना चहहिं गूढ़ गति जेउ, जीह नाम जपि जानहि तेउ ।**

इसलिये गुरु व गोविंद के चरणों का आश्रय लेकर निरन्तर हरि नाम जपते रहो। नाम जप की कृपा से चित्त शुद्धि होगी। फिर भगवान् के जन्म व कर्म के रहस्य (तत्त्व ज्ञान) हृदय में स्वतः ही खुलने लगेंगे। फिर मालूम पड़ेगा कि अजन्मा का जन्म क्या है?

**नाम जपत कलि मिलिहैं राम ।**
**ओर न साधन दूजा कोई, सुमिरन बिन सब है बेकाम ।।**
**कृत त्रेता द्वापर कलि साधन, ध्यान यजन पूजन हरि नाम ।**
**सब सौं उत्तम सरल सरस मग, हरि हरि कहत मिले विश्राम ।।**
**धन्य जीव कलियुग मँह सोई, भजत सदा जो श्यामा श्याम ।**
**जापक सम नहिं जग में कोई, युगल बसत हिय आठों जाम ।।**
**त्याग कुसंग करहु नित सतसँग,मेट अपुनपो बिक बिन दाम ।**
**करुण दास जप संकीर्तन करि, पावोगे अविचल हरि धाम ।।**

# मनुष्य, देवता व भगवान् के शरीर में अंतर

इस ब्रह्माण्ड के भीतर ब्रह्मा के द्वारा पूर्व कर्मानुसार रचे हुए प्रत्येक जीव के शरीर पंचतत्त्वों (मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) से निर्मित हैं। भले ही वह देवराज इन्द्र आदि देवताओं के शरीर ही क्यों न हो। एक क्षुद्र कीट से लेकर इन्द्र आदि देवताओं तक सभी के शरीर पाँचभौतिक ही होते हैं। अंतर केवल इतना ही होता है किसी के शरीर में पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता होती है जैसे भूलोक में जीवों के शरीर, किसी के शरीर में जल तत्त्व की, किसी के शरीर में अग्नि तत्त्व की, किसी के शरीर में वायु तत्त्व की तो किसी के शरीर में आकाश तत्त्व की प्रधानता होती है। पृथ्वीलोक में प्रत्यक्षदर्शी प्रत्येक जीव के शरीर पृथ्वी तत्त्व प्रधान होते हैं। भूत-प्रेतों के शरीर भी हमारी तरह पंचतत्त्व के ही होते हैं लेकिन उनके शरीर में वायु तत्त्व की प्रधानता होती है। इसी प्रकार इन्द्र आदि देवताओं के शरीर पाँचभौतिक होने पर भी अग्नि तत्त्व की प्रधानता होने से पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता वाले मानव उनको देख नहीं सकते। पृथ्वी तत्त्व प्रधान मनुष्य शरीर की अपेक्षा वायु तत्त्व प्रधान शरीर वाले भूत-प्रेतों में शक्ति अधिक होती है। भूत-प्रेतों की अपेक्षा अग्नि तत्त्व प्रधान देवताओं में अधिक शक्ति होती है। देवताओं के शरीर भूतों-प्रेतों की अपेक्षा दिव्य और शुद्ध होते हैं। मनुष्य के शरीर में मल-मूत्र, पसीना आदि विकार होते हैं। देवताओं के शरीर में मल-मूत्र, पसीना आदि नहीं होते। देवताओं के शरीर से सुगन्ध आती है भले ही वो भौतिक ही हो। देव शरीर में मानवों की तरह शारीरिक रोग नहीं होते। इनको केवल चिंता, भय, जलन, ईर्ष्या आदि मानसिक रोग होते हैं। दिव्य शक्ति सम्पन्न होने से संकल्प द्वारा देवता प्रकट व अंतर्धान हो जाते हैं। देवताओं के पास भगवान् की दी हुई अनेक ऋद्धियाँ व सिद्धियाँ होती हैं। मनुष्य शरीर कर्म और भोग योनि है जबकि देव योनि केवल भोग योनि है।

मुख्य रूप से देवता दो प्रकार के होते हैं-

**1. आजान देवता** – जो प्रलय (एक कल्प) तक देवलोक में रहते हैं वह आजान देवता कहलाते हैं। जैसे इन्द्र, वरूण, मरूद् गण,

आदित्य, वसु आदि।

**2. साधारण देवता** – ये देवता कल्प पर्यन्त देवलोक में नहीं रह सकते। इनके कम पुण्य होते हैं। इसलिये ये बीच में ही पुण्य क्षीण होने पर वापिस पृथ्वी लोक में जन्म लेते हैं।

**ते तं भुक्त्वा स्वर्ग लोकं विशालं,**
**क्षिणे पुण्ये मृत्युलोके विशन्ति ।**

(गीता 9/21)

आजान देवता हो चाहे साधारण देवता अंत में वापिस मृत्युलोक में दोनों को ही आना पड़ेगा। दोनों के ही शरीर दिव्य होने पर भी पाँचभौतिक होने के कारण विनाशी ही हैं।

स्वर्ग के देवता कभी हमारी आपकी तरह ही भूलोक के मानव थे। पुण्य कर्मों के प्रभाव से स्वर्ग में देवयोनि को तो प्राप्त हो गए लेकिन भगवान् की आराधना के बिना भगवद् प्राप्ति नहीं कर सके। आवागमन के चक्कर से नहीं छूट सके। देवताओं का राजा इन्द्र पूर्व की सृष्टि में पुरन्दर नाम का राजा था जिसने सौ अश्वमेध यज्ञों के प्रभाव से प्रलय के बाद नई सृष्टि में इन्द्र पद को प्राप्त किया। पुण्यों के प्रभाव से इनको देवलोक के दिव्य भोग भोगने के लिये दिव्य शरीर प्राप्त हुआ है। प्रलय के बाद देवराज इन्द्र को भी नई सृष्टि में इस भूलोक पर जन्म लेने के लिये फिर दोबारा पृथ्वी तत्त्व प्रधान पार्थिव देह धारण करना पड़ेगा।

अब हम बात करते हैं भगवान् के शरीर की। बहुत से अनभिज्ञ लोगों की यही धारणा है कि भगवान् का शरीर नहीं होता। वे अशरीरी, अवयक्त व निराकार हैं। इस धारणा से कुछ ऊँचे उठे लोग सोचते हैं कि भगवान् निराकार हैं परंतु कभी-कभी धर्म व धर्मात्माओं की रक्षा के लिये तथा अधर्म व अधर्मियों के नाश के लिये शरीर धारण करके निराकार से साकार बन जाते हैं। कार्य पूर्ण होने पर फिर निराकार हो जाते हैं। इन दोनों प्रकार की धारणा वाले वही लोग हैं जिन्होंने सनातन धर्म के मूल ग्रंथों व संतों को ठीक प्रकार से न पढ़ा, न सुना-समझा।

भगवान् अनादि काल से साकार व निराकार दोनों ही हैं। जिस प्रकार सूर्य और प्रकाश दोनों में कौन पहले और कौन बाद में, इसका

निर्णय करना मुश्किल है। हो सकता है कोई कह दे कि साकार सूर्य पहले, निराकार प्रकाश बाद में। फिर प्रश्न उठेगा कितनी देर बाद में? कोई समय? यदि कोई कहे कि बिना समय के तुरंत बाद। तो फिर पहले और बाद का झगड़ा ही समाप्त हो गया। सीधा – सीधा क्यों नहीं कहते कि दोनों एक ही साथ, एक ही समय में प्रकट होते हैं। सूर्य के प्रकाश को हमारी आँखों तक पहुँचने में देर हो सकती है लेकिन सूर्य और प्रकाश एक ही समय प्रकट होते हैं।

दूसरा उदाहरण है दूध और दूध की सफेदी का। दूध और दूध की सफेदी में पहले कौन? तो इसका उत्तर भी यही होगा दोनों एक साथ। इसी प्रकार निराकार और साकार भगवान् के दोनों रूप अनादि और अनन्त हैं। कोई भी पहले या बाद में नहीं। जिस प्रकार सूर्य और प्रकाश एक ही तत्त्व के दो प्रकार हैं उसी प्रकार साकार और निराकार एक ही तत्त्व के दो प्रकार हैं।

भगवान् सदा से हैं, साकार हैं, रूप वाले हैं। भगवान् न शरीर धारण करते और न ही छोड़ते हैं क्योंकि धारण करना व छोड़ना अपने से अलग दूसरी वस्तु का होता है, अपने आप का नहीं। भगवान् का शरीर स्वयं भगवान् ही है।

**चिदानन्दमय देह तुम्हारी** (श्रीरामचरितमानस)

भगवान् और भगवान् का शरीर ये दो नहीं है, दोनों एक ही तत्त्व हैं। जिस प्रकार हमारा या देवताओं का शरीर धारण किया हुआ है और एक दिन छोड़ना भी पड़ेगा ही, लेकिन भगवान् शरीर धारण नहीं करते, वो स्वयं ही शरीर होते हैं। तो छोड़ने का तो प्रश्न ही नहीं। भगवान् की आत्मा और भगवान् का शरीर एक ही तत्त्व है। या यों कहो भगवान् में देह और देही का भेद नहीं होता।

जीवात्मा के लिये कहा है –

**ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुख राशी ।**

(श्रीरामचरितमानस)

यह आत्मा ईश्वर का अंश है। यह अवनिाशी, चैतन्य, निर्मल व सुख स्वरूप है। इसी प्रकार शरीर के लिये कहा है –

**छिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अधम शरीरा।**
**(श्रीरामचरितमानस)**

मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँच तत्त्वों से यह शरीर रचा हुआ है। क्योंकि आत्मा और शरीर दोनों ही भिन्न-भिन्न हैं। इसलिये आत्मा और शरीर के लिये अलग- अलग परिभाषा कही गई है। लेकिन भगवान् की आत्मा व भगवान् का शरीर ये भिन्न-भिन्न नहीं है। मनुष्यों व देवताओं की आत्मा और इनके शरीर दो स्वतंत्र भिन्न-भिन्न सत्ताएँ हैं लेकिन भगवान् की आत्मा और भगवान् का शरीर ये भिन्न-भिन्न दो स्वतंत्र सत्ताएँ नहीं है। जिस प्रकार चीनी (खवांड) के बने खिलोने की गुड़िया के शरीर में भिन्न-भिन्न अंग, पोषाक, जूता, केश आदि होने पर भी वह केवल एक ही चीनी तत्त्व है। इसी प्रकार भगवान् की आत्मा, शरीर, वस्त्र, अलंकार आदि सब कुछ एक ही परमात्म तत्त्व है।

मनुष्यों का शरीर पृथ्वी तत्त्व प्रधान पार्थिव, देवताओं का शरीर अग्नि तत्त्व प्रधान दिव्य एवं भगवान् का शरीर अप्राकृतिक चिन्मय (आत्म तत्त्व) होता है। यही तीनों के शरीरों में मुरव्य अंतर है।

**अद्भुत जोरी प्रियतम प्यारी।**
**जाने को राधा को मोहन, बिहरत कुञ्जन कुञ्ज बिहारी।।**
**नागरि नागर रूप दुहुन को, भेद न पावै अज त्रिपुरारी।**
**दोउ कान्ता दोउ कान्त अनादी, करुण दास रस द्वै तनु धारी।।**

# पुराणों में हरि,राम व कृष्ण नाम की अद्भुत महिमा

यद्यपि प्रभु के अनन्त नाम हैं और समस्त नामों की अपार महिमा है। किसी भी नाम को जीवन का आधार बनाकर जीव भव पार हो सकता है तथापि यहाँ पर प्रभु के हरि, राम व कृष्ण नाम की महिमा में पुराणों के कुछ श्लोक उद्धृत किये जा रहे हैं। जिसको पढ़कर महामन्त्र (हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे) जप करने वाले भक्तों की जप में और अधिक रुचि एवं उत्साह बढ़े। ये ही इस लेख का प्रयोजन है।

महामन्त्र में इन्हीं नामों की आवृति हुई है। **कलिसन्तरणोपनिषद्** में इसी महामन्त्र की महिमा स्वयं ब्रह्मा जी ने देवर्षि नारद जी को बड़े विस्तार से बताई और इसके जप की विधि पूछने पर ब्रह्मा जी ने स्पष्ट कह दिया–**नास्य विधिरिति**। अर्थात् इसके जप में कोई विधि- विधान नहीं है। **सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन्** सर्वदा शुद्ध या अशुद्ध होने पर भी केवल उच्चारण मात्र से जीव का कल्याण हो जाता है। स्त्री–पुरुष, ब्राह्मण- चाण्डाल, गृहस्थी–सन्यासी, शुद्ध–अशुद्ध, विद्वान्–मूर्ख कोई भी किसी भी प्रकार से इस महामन्त्र को जप करके अपना उद्धार कर सकता है।

## ‘हरि’ नाम की महिमा

**जितं तेन जितं तेन जितं तेनेति निश्चितम् ।**
**जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ।।**

जिसकी जिह्वा के अग्रभाग पर ‘हरि’ - ये दो अक्षर विद्यमान हैं, उसकी जीत हो गई, जीत हो गई, निश्चय ही उसकी जीत हो गई।

**प्राणप्रयाणपाथेयं संसारव्याधिभेषजम् ।**
**दुःखशोकपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम् ।।**

‘हरि’ यह दो अक्षरों का नाम प्राणप्रयाण (मृत्यु के बाद) के पथ का पाथेय (राह खर्च) है, संसार (जन्म–मरण) रूपी रोग की औषधि है तथा दुःख और शोक से रक्षा करने वाला है।

**सकृदुच्चारितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।**
**बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ।।**

जिसने 'हरि' इन दोनों अक्षरों का उच्चारण कर लिया, उसने मोक्ष तक पहुँचने के लिये कमर कस ली।

**प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत् ।**
**तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम दहेदघम् ।।**

जैसे असावधानी से भी छू लेने पर आग का एक कण उस अंग को जला देता है, उसी प्रकार यदि हरि नाम का होठों से स्पर्श हो जाए तो वह पाप को जलाकर भस्म कर देता है।

**हरिनामपरा ये च घोरे कलियुगे नराः ।**
**त एव कृतकृत्याश्च न कलिर्बाधते हि तान् ।।**

घोर कलियुग में जो मनुष्य हरिनाम की शरण ले चुके हैं, वे ही धन्यातिधन्य हैं। कलि उन्हें बाधा नहीं देता।

**हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय ।**
**इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः ।।**

हरे! केशव! गोविन्द! वासुदेव! जगन्मय- इस प्रकार जो नित्य उच्चारण करते हैं, उन्हें कलियुग कष्ट नहीं देता।

## 'राम' नाम की महिमा

**रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापापनोदकः ।**
**गच्छंस्तिष्ठञ्शयानो वा मनुजो रामकीर्तनात् ।।**
**इह निर्वर्तितो याति चान्ते हरिगणो भवेत् ।**
**रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः ।।**

'राम' ये दो अक्षरों का मन्त्र, जपने पर समस्त पापों का नाश करता है। चलते, खड़े हुए अथवा लेटे हुए अर्थात् किसी भी समय जो मनुष्य राम नाम का कीर्तन करता है, वह यहाँ कृतार्थ होकर जाता है और अंत में भगवान् का पार्षद बनता है। 'राम' यह दो अक्षरों का मंत्र सौ करोड़ मंत्रों से भी अधिक महत्त्व का है।

**न रामादधिकं किञ्चित् पठनं जगतीतले ।**
**रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना ।।**

राम नाम से बढ़कर जगत् में जप करने योग्य कुछ भी नहीं है। जिन्होंने राम नाम का आश्रय लिया है उनको यम यातना नहीं भोगनी पड़ती।

**रामेति मन्त्रराजोऽयं भवव्याधिनिषूदकः ।**
**रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः ।।**
**द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भूवि ।**
**देवा अपि प्रगायन्ति राम नाम गुणाकरम् ।।**
**तस्मात् त्वमपि देवेशि राम नाम सदा वद ।**
**रामनाम जपेद् यो वै मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।।**

'राम' यह मन्त्रों का राजा है। यह भय तथा व्याधि का विनाश करने वाला है। 'रामचन्द्र' 'राम' 'राम' – इस प्रकार उच्चारण करने पर यह दो अक्षरों का मन्त्रराज पृथ्वी में समस्त कार्यों को सफल करता है। गुणों की खान इस राम नाम का देवता लोग भी भली भाँति गान करते हैं। इसलिये हे देवेश्वरि! तुम भी सदा राम नाम का उच्चारण किया करो। जो राम नाम का जप करता है, वह सारे पापों से छूट जाता है।

**राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।**
**सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ।।**

भगवान् शंकर कहते हैं – 'मेरे मन में रमने वाली सुमुखी शिवे! मैं 'राम, राम, राम' इस प्रकार जप करता हुआ राम में ही रमता हूँ। दूसरे सहस्त्र नामों के समान केवल एक राम नाम की महिमा है।

**न देशकालनियमो न शौचाशौचनिर्णयः ।**
**परं संकीर्तनादेव राम रामेति मुच्यते ।।**

कीर्तन में देश, काल का नियम नहीं है। शुद्धि – अशुद्धि का निर्णय भी आवश्यक नहीं है। केवल 'राम, राम' ऐसा कीर्तन करने से ही परम मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

# 'कृष्ण' नाम की महिमा

**सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम् ।**
**एकवृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति ।।**

पवित्र सहस्रों नामों की तीन आवृत्तियाँ करने से जो फल मिलता है, उसे कृष्ण – नाम एक ही बार के उच्चारण से सुलभ करा देता है।

**सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा**
**भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम ।**

श्रद्धा से, अवहेलना से – कैसे भी कृष्ण नाम का उच्चारण मनुष्य मात्र को तार देता है।

**तदेव मन्यते भक्तेः फलं तद्रसिकैर्जनैः ।**
**भगवत्प्रेमसम्पत्तौ सदैवाव्यभिचारतः ।।**

इसलिये नाम रसिक भक्तजन उन कृष्ण नाम को भक्ति का फल मानते हैं क्योंकि भगवद् प्रेम की प्राप्ति कराने में वह कभी असफल नहीं हुआ।

**नामसंकीर्तनं प्रोक्तं कृष्णस्य प्रेमसम्पदि ।**
**बलिष्ठं साधनं श्रेष्ठं परमाकर्षमन्त्रवत् ।।**

श्रीकृष्ण का नाम कीर्तन प्रेमरूपी सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये प्रबल एवं श्रेष्ठ साधन कहा गया है। वह सम्मोहन मंत्र की भाँति चित्त को अत्यन्त आकर्षित करने वाला है।

**आकृष्टिः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसा**
**माचाण्डालमभूल्लोकसुलभो वश्यश्च मोक्षश्रियः**
**नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते**
**मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलतिश्रीकृष्णनामात्मकः**

यह कृष्ण नाम रूपी मंत्र शुद्ध चित्त वाले महात्माओं के चित्त को बलात् अपनी ओर आकृष्ट करने वाला तथा बड़े – से – बड़े पापों को मूल से मिटा देने वाला है। मोक्ष रूपिणी लक्ष्मी के लिये तो यह वशीकरण ही है। इतना ही नहीं यह गूँगे को छोड़कर चाण्डाल से लेकर ब्राह्मण तक सभी

मनुष्यों के लिये सुलभ है। दीक्षा, दक्षिणा और पुरश्चरण का यह तनिक भी विचार नहीं करता। यह कृष्ण नाम रूपी मंत्र जिह्वा का स्पर्श करते ही सभी के लिये पूर्ण फल देने वाला होता है।

**ब्रह्माण्डानां कोटिसंक्ष्याधिकाना मैश्वर्यं यच्चेतना वा यदंशः ।**
**आविर्भूतं तन्महः कृष्णनाम तन्मे साध्यं साधनं जीवनं च ।।**

करोड़ों की संख्या से भी अधिक ब्रह्माण्डों का जो ऐश्वर्य है, वह जिसका अंश मात्र है वही तेज पुञ्ज 'कृष्ण' नाम के रूप में प्रकट हुआ है। वह 'कृष्ण' नाम ही मेरा साध्य, साधन और जीवन है।

**कः परेतनगरीपुरन्दरः को भवेदथ तदीयकिंकरः**
**कृष्णनामजगदेकमंगलं कण्ठपीठमुररीकरोतिचेत्**

यदि जगत् का एकमात्र मंगल करने वाला श्रीकृष्ण नाम कंठ रूपी आसन को स्वीकार कर लेता है तो यमपुरी का स्वामी उस कृष्ण भक्त के सामने क्या है? अथवा यमराज के दूतों की क्या मजाल।

**कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।**
**जलं भित्वा यथा पद्मं नरकादुद्धारयाम्यहम् ।।**

जो कृष्ण! कृष्ण!! कृष्ण!!! यों कहकर मेरा प्रतिदिन स्मरण करता है, जिस प्रकार कमल जल को भेदकर ऊपर निकल आता है, उसी प्रकार मैं उसे नरक से उबार लेता हूँ।

**पापनलस्य दीप्तस्य भयं मा कुरु पुत्रक ।**
**श्रीकृष्णनाममेघोत्थैः सिच्यते नीरबिन्दुभिः ।।**

हे पुत्र! पापरुपी प्रज्वलित अग्नि से भय न करो। श्रीकृष्ण के नाम रूपी मेघों की जल की बूँदों से उसे सींचकर बुझा दिया है।

**कलिकालभुजंगस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य किं भयम् ।**
**श्रीकृष्णनामदारूत्थवह्निदग्धः स नश्यति ।।**

तीखे दाँतों वाले कलिकाल रूपी सर्प का क्या भय? श्रीकृष्ण के नामरूपी ईंधन से उत्पन्न आग के द्वारा वह जलकर नष्ट हो जाता है।

**पततां शतखण्डां तु सा जिह्वा रोगरूपिणी ।**
**श्रीकृष्ण कृष्ण कृष्णेति श्रीकृष्णेति न जल्पति ।।**

जो 'श्रीकृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, श्रीकृष्ण' इस प्रकार श्रीकृष्ण नाम का कीर्तन नहीं करती, वह रोगरूपिणी जिह्वा सौ टुकड़े होकर गिर जाए।

इस प्रकार पुराणों में प्रभु के हरि, राम व कृष्ण नामों की बड़ी भारी महिमा गाई है। यहाँ तो केवल कुछ अंश का ही दिग्दर्शन कराया गया है। इसलिये आत्म कल्याण चाहने वाले साधकों का मुख्य कर्त्तव्य है कि वो जितना अधिक-से-अधिक हो सके महामन्त्र (हरे राम......) का जप करें।

**मनवा राम नाम धन पाले ।**
**बीता समय हाथ नहि आवे, रूठा मीत मनाले ।।**
**सतसँग सेवा सुमिरिन करि पुनि, सोया भाग जगाले ।**
**लाख चुरासी भटक थक्यो अब, बिगड़ी बात बनाले ।।**
**जनम मरण को छूटै बंधन, माया मोह मिटाले ।**
**हरि बिन कोई सगा न संगी, दिल में राम बसाले ।।**
**चंचल मन क्यों इत उत डोले, हरि को ध्यान लगाले ।**
**करुण दास निशि दिन समझाये, गीत प्रीत के गाले ।।**

# भक्तों के नाम भगवान् का पत्र

मैं हूँ तुम्हारा अपना। केवल! केवल!! केवल!!! मैं ही तुम्हारा अपना हूँ। मेरे सिवा तुम्हारा दूसरा कोई भी तो नहीं है। इसलिये बाहें फैलाये अनादि काल से तुमको हृदय से लगाकर तुम्हारी व अपनी तड़पन बुझाने को तैयार खड़ा हूँ। एक तुम हो जो मेरी तरफ पीठ किये हो। कभी भूलकर भी मेरी ओर ताकते तक नहीं।

मेरे सिवा कोई दूसरा तुम्हारा है, यह केवल भ्रम मात्र है सच्चाई नहीं। इसी सच्चाई को बताने के लिये मैंने मृत्यु व काल का सृजन किया है। काल बीतने व मृत्यु आने पर यह सच्चाई सबके सामने आ जाती है कि तुम्हारा कोई नहीं है। तुम अकेले हो। मृत्यु सच्चाई को केवल बताती ही नहीं बल्कि प्रत्यक्ष दिखाकर समझाती है कि इस झूठी दुनिया में न तो कोई व कुछ तुम्हारा है और न तुम किसी के हो। मेरे बिना प्रत्येक जीवात्मा अकेली है उसका कोई भी संगी साथी नहीं है। अनादि काल से मेरे बिना यह भ्रम में भटक रही है।

इसलिये कहता हूँ मेरे पास आ जाओ। देखो, मैं कबसे तुम्हारी राह देख रहा हूँ। जब तुम किसी संत के पास जाते हो तो मुझको लगता है कि अब तुम मेरे समीप आ जाओगे। सत्संग के द्वारा मेरी तरफ बढ़ने लगोगे। लेकिन वहाँ जाकर भी तुम मुझको नहीं बल्कि दुनिया को ही आगे रखते हो। वहाँ जाकर भी संसार की चर्चा करते हो। संत तुमसे मेरी भक्ति कराना चाहते हैं और तुम संसार को चाहते हो। कितने लोग तो मेरी भक्ति करके भी मेरी तरफ नहीं बढ़ पाते क्योंकि मेरी भक्ति तो करते हैं लेकिन हृदय से चाहते हैं संसार के सुखों को ही।

मेरी चाहत का नाम ही तो भक्ति है। भक्ति हृदय के भाव का नाम है न कि किसी क्रिया का नाम। हृदय में भक्ति है तो हर क्रिया भक्ति का ही अंग है। यदि मेरी भक्ति हृदय में नहीं है तो किसी भी पवित्र से पवित्र क्रिया को भक्ति की संज्ञा नहीं दी जा सकती। मेरी भक्ति हृदय में आयेगी केवल मुझको ही अपना मानने से। यह भाव आयेगा कथा, सत्संग सुनने व मेरे प्रेमी संतों के संग से, उनकी कृपा से।

, मीरा ने कहा – मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई। बस, इसी

भाव का नाम भक्ति है। ये भक्ति मुझको सदा के लिये भक्तों को अपनाने के लिये विवश कर देती है। यह भक्ति बिना मेरे प्रेमियों की कृपा के प्राप्त नहीं की जा सकती। मेरे संतों के पास भक्ति के खजाने की चाबी है। विनम्रता पूर्वक अनूसूया दृष्टि रखकर सेवा द्वारा पहले संत कृपा प्राप्त करो, तभी सच्चाई से भक्ति होगी। मेरे प्रेमी संतों को अपने अनुकूल किये बिना मेरी भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

**भक्ति स्वतंत्र सकल सुख खानी। बिन सत्संग न पावहिं प्रानी ।।**
**भक्ति तात अनुपम सुख मूला । मिलहहिं संत होहिं अनुकूला ।।**

यह भक्ति केवल माँगने पर नहीं मिलती। इसके लिये तो अपने आपको मिटाना पड़ता है। अपनी समस्त सांसारिक इच्छाओं को फूँककर फिर उस भस्म पर नाचना पड़ता है। जहाँ मैं (अहं) है, वहाँ मेरी भक्ति फलित नहीं होती। तभी तो कबीर ने कहा–

**कबीरा खड़ा बाजार में, लिये लुकाठी हाथ ।**
**जो घर फूँके आपनो, चले हमारे साथ ।।**

**जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहीं**
**प्रेम गली अति सांकरी, तामें द्वै न समाये**

भक्ति में तो घर फूँक तमाशा देखने वाली बात है। जब संत तुम्हारी इस भावना पर रीझेंगे तभी उनके हृदय से निकला भक्ति का आशीर्वाद फलित होगा। आशीर्वाद तो मैं माता–पिता का पुत्र को दिया हुआ भी सत्य कर देता हूँ यदि वो पुत्र के भावपूर्वक सेवा पर रीझ कर दिया गया हो तो। फिर संत कृपा करें वह कृपा फलवती न हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। इसलिये श्रद्धा, विनम्रतापूर्वक मेरे प्रेमी संतों के अनुकूल बनकर उन्हें अपने अनुकूल बना लेना चाहिये। तभी मेरी भक्ति हृदय में आयेगी। संत धन, वस्त्र, भोजन व किसी संसारी वस्तु से नहीं रीझते। वो तो मेरी ही तरह केवल सच्चे भाव पर रीझते हैं। सच्चे भाव से श्रद्धा पूर्वक प्रणाम ही संत की प्रसन्नता का कारण बन जाता है। संत और माता–पिता को रीझाने में अधिक कुछ करना नहीं पड़ता।

अब तक जिन्होंने भी मुझे पाया सभी के पीछे संत की कृपा का

ही हाथ था। सत्संग से ही भाव भक्ति हृदय में पुष्ट होती है। संत कृपा से भक्ति का हृदय में बीजारोपण होता है और उनकी वाणी श्रवण से भक्ति का पौधा पनपने लगता है। सेवा से वह फलित हो जाता है। तभी तो मीरा ने कहा –

**संतन ढींग बैठ बैठ लोक लाज खोइ**
**अँसुअन जल सींच सींच प्रेम बेल बोइ**
**अब तो बेल फैल गइ आनन्द फल होइ**
**मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोइ**

ये भाव ही तो साधना का फल है। श्रीमद्भागवत के 11वें स्कन्ध के 12वें अध्याय में मैंने उद्धव को यही रहस्य समझाया कि सत्संग के समान मेरी प्राप्ति का दूसरा कोई सरल व श्रेष्ठ साधन नहीं है। साधन तो बहुत लोग करते हैं लेकिन जिस भाव से मैं रीझता हूँ, वह सत्संग के बिना दुर्लभ है। आज तक मेरी तरफ जो भी बढ़ा है उसका एकमात्र कारण रहा है सत्संग। इसी प्रकार आज तक जितने भी बहिर्मुख होकर दुःख रूप माया में फँसे हैं उसका एकमात्र कारण रहा है कुसंग। कुसंग से बचना तुम्हारा काम है और सत्संग देना मेरा काम है।

ध्यान रखना बिना श्रद्धा, विश्वास के कुतर्कशील बुद्धि द्वारा कभी भी सत्संग का पूर्ण लाभ नहीं होता। कभी – कभी तो संत अपराध बनकर लाभ की जगह उल्टे हानि भी हो जाती है। लेकिन ये हानि संत की तरफ से नहीं, आपकी तरफ से ही होगी। इसलिये तो कहा है – **संत मिलन को चालिये, तजि माया अभिमान**।

तुम्हारे श्रद्धा, विश्वास व नम्रतापूर्वक व्यवहार से प्रसन्न होकर संत तुमको मेरी गोपनीय से गोपनीय बात भी बता देंगे क्योंकि संत अधिकारी को पाकर कभी भी गूढ़ तत्त्व छिपाते नहीं। यद्यपि शास्त्रों में यत्र – तत्र – सर्वत्र मेरी ही वाणी का वर्णन हुआ है। गीता में अर्जुन से, भागवत में उद्धव से बताने योग्य हर बात बता दी फिर भी संतों से अध्ययन व समझे बिना उसका वास्तविक अर्थ समझ में नहीं आ सकता।

संतों का बहुत सत्संग सुनकर गलती से भी कभी यह न मान लेना

कि बहुत सुन लिया है, सब कुछ तो सुन ही लिया है अब क्या सत्संग करना। ऐसा सोचोगे तो भाव में शिथिलता आकर साधन पथ से दूर हटते चले जाओगे।

बहुत जान लेने के बाद भी अभी बहुत कुछ जानना बाकी है जो मैं संतों के माध्ययम से तुमको बताना चाहता हूँ। साधना करते-करते ज्यौं-ज्यौं तुम्हारा अधिकार बढ़ता जाएगा त्यौं-त्यौं संत ऊँची से ऊँची गुप्त से गुप्त तत्त्व व रहस्य की बातें समझाते जाएगें और इस प्रकार तुम साधना (पुरुषार्थ), भावना (भक्ति) एवं कृपा से संयोग से मेरा प्रेम प्राप्त कर प्रेम सागर की अनंत तरंगों में से एक तरंग बनकर सदा के लिये आनन्दित हो जाओगे।

मैं उस भोजन के समान हूँ जो कई प्रकार से बनाया व पाया जाता है। उसके स्वाद भी अलग-अलग प्रकार के हो जाते हैं। एक दूध और मीठे को ही लो। केवल इन दोनों के संयोग से कितने प्रकार की मीठाइयाँ बन जाती हैं। स्वाद भी अलग-अलग प्रकार के होते हैं। ये तो बनाने वाले के भाव पर निर्भर है कि वो इन दोनों को किस रूप में पसंद करता है। जिस प्रकार दूध और मीठा अनेक मिठाइयों का रूप धारण कर लेता है उसी प्रकार मैं और मेरी अह्लादिनी शक्ति मिलकर अनेक रूप धारण करके भक्तों को अनेक प्रकार के रस प्रदान करते हैं। हम दोनों भक्त के भावानुसार अनेक रूप धारण करते हैं।

राधाकृष्ण, सीताराम, गौरीशंकर, लक्ष्मीनारायण आदि रूप भक्तों के भावानुसार धारण कर भक्तों की मनवांछा पूरी करते हैं। मैं योगियों के लिये ब्रह्मज्योति हूँ, ज्ञानियों के लिये निर्गुण निराकार हूँ, मैं किसी के लिये शब्दब्रह्म (अनहद नाद) हूँ, किसी के लिये विराट सृष्टि के रूप में तो किसी के लिये अणु रूप में, किसी के लिये उसी की आत्मा के रूप में अनुभवगम्य होता हूँ। भक्तों के भावानुसार मेरे अनन्तानन्त रूप हैं। यद्यपि इन सब रूपों में मैं ही हूँ, फिर भी इन सबका अनुभव अलग-अलग प्रकार से होता है। इसमें आनन्द की उपलब्धि भी अलग-अलग प्रकार की ही होती है। जिस प्रकार भोजन से पेट तो सबका एक समान भरता है लेकिन स्वाद व पुष्टि अलग-अलग प्रकार की होती है।

प्रेमाभक्ति के द्वारा मुझे जिस प्रकार अनुभव किया जा सकता है वैसा किसी भी साधन से नहीं। मेरा पूर्ण माधुर्य रस प्रेमाभक्ति से ही प्राप्त किया जा सकता है। ब्रजवासियों ने इसी भक्ति के द्वारा मेरे पूर्ण माधुर्य रूप का रसास्वादन किया। इन ब्रजवासियों में भी गोपियाँ सबसे आगे रहीं जिन्होंने मुझे कांत रूप में प्राप्त किया। इनसे भी आगे वो सखियाँ रही जिन्होंने राधा सहित मुझ युगल को अपना इष्ट माना। इस युगल रस (आनन्द) से बढ़कर ओर कोई रस नहीं है। इस रस को सखियों जैसा भाव हृदय में धारण कर ही पाया जा सकता है। मेरे युगल रूप की प्राप्ति के लिये भी रसिक संतों की कृपा आवश्यक है। वो ही इस रस का भेद समझाकर इसके योग्य बना सकते हैं।

जितने भी धर्म–सम्प्रदाय हैं वो सब किसी न किसी रूप में मेरी ही आराधना करते हैं। वे जिन–जिन रूपों में मेरी व्याख्या करते हैं मैं वह सब हूँ। मन्दिर, मस्जिद्, गुरुद्वारे व गिरिजाघर सब मेरी ही उपासना के पवित्र स्थल हैं। इन सबमें किसी न किसी रूप से मेरी ही आराधना होती है। मुस्लिम मेरे लिये रोज़ा व हिन्दू एकादशी रखते हैं। कोई मेरे लिये गीता, कोई कलमा पढ़ते हैं, कोई गुरुद्वारे में तो कोई मन्दिर में पाठ करते हैं। मेरे अनन्त नाम हैं जो समय–समय पर संतों के द्वारा इस संसार में प्रकट हुए हैं और होते रहेंगे। कोई हरि, राम व कृष्ण तो कोई अल्लाह, खुदा, कोई वाहेगुरु नाम जपता है। कोई–कोई तो आत्मा के रूप में ही मुझको देखता है। आत्मा में ही सोऽहं की भावना करता है।

अनादि काल से जीवों ने मुझको बहुत प्रकार से भजा है। मेरी प्राप्ति के अभी ओर भी बहुत से साधन हैं जिनका किसी को पता ही नहीं। हो सकता है समय पर वो भी किसी महापुरुष के द्वारा प्रकट हो जाएँ।

मुझे उस समय बहुत हँसी आती है, साथ ही दुःख भी होता है, थोड़ा–थोड़ा क्रोध भी आता है जब लोग मुझे ही बाँटने लगते हैं। मेरे नाम पर ही झगड़े, दंगे, फसाद खड़े करने लगते हैं। उस समय मैं तटस्थ होकर सब कुछ देखता रहता हूँ। किसी का भी पक्ष नहीं लेता क्योंकि मैं सबका हूँ, सब मेरे हैं। सब धर्म–सम्प्रदाय मेरी प्राप्ति का ही मार्ग बताते हैं। कोई

भी गलत नहीं, सभी ठीक हैं। बस, सब यहीं पर गलत हैं कि वे एक दूसरे को गलत मानकर परस्पर विरोध करने लगते हैं। इसका कारण यह कि अधिकतर लोगों ने धर्म-सम्प्रदाय को हृदय में नहीं बल्कि अपने अहंकार में स्थापित कर रखा है। ऐसे अहंकारी लोग धर्म को मानने से ज्यादा धर्म को मनवाने पर ही जोर देते हैं। वो भी इयलिये नहीं कि उनका उद्धार हो बल्कि इसलिये कि हमारी संख्या की वृद्धि हो, अभिमान की पुष्टि हो।

जो दूसरों के कल्याण के लिये भक्ति का प्रचार किया जाता है, वह तो मेरी भक्ति का ही एक अंग है। लेकिन जब कोई इस प्रचार कार्य को स्वार्थ व अभिमान के कारण करता है तब यही अपराध बन जाता है। आज समाज में अधिकतर दंगे लोग मेरे नाम पर ही कर रहे हैं क्योंकि लोगों ने स्वयं को नहीं बल्कि अपने अभिमान व स्वार्थ को धर्म से जोड़ रखा है। ऐसे कट्टर, बेइमान धार्मिकों से ईमानदार नास्तिक अच्छे हैं।

जो मेरे सच्चे भक्त हैं वो मुझे किसी भी रूप में मानते हुए सभी धर्मों व सम्प्रदायों का सम्मान करें। अपने मार्ग को न छोड़ें, दूसरे मार्ग की निन्दा न करें। मैं सबमें हूँ, सब मुझमें हैं। सर्वत्र मेरी ही भावना करें। सबसे हिल-मिल कर रहें। प्रारब्ध भोगते हुए, पापों व अपराधों से बचकर मेरी प्रीति के लिये शुभ कर्मों का अनुष्ठान करें। मेरा जप-चिंतन करते हुए कर्म करने का अभ्यास ही सच्ची साधना है।

कहने को तो मैं बहुत कुछ कहना चाहता हूँ लेकिन समय-समय पर वो मैं संतों के माध्ययम से कहता रहूँगा। ध्यान से सुनना व अनुशरण करना और इस प्रकार अंत में तुम मुझको प्राप्त कर लोगे। सदा के लिये दुःखों से छूट जाओगे। मुझ पर हर प्राणी का जन्मसिद्ध अधिकार है क्योंकि मैं सदा से तुम्हारा था, हूँ और रहूँगा।

तुम्हारी इंतजार में....

तुम्हारा अपना....

# मैं काल हूँ लेकिन प्राकृत नहीं

मैं क्षण–क्षण में व्यतीत होने वाला, आठ प्रहर दिन एवं रात के रूप में विचरण करने वाला व सबको ग्रसने वाला प्राकृत काल नहीं हूँ। मैं तो प्रेमानन्दमय प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र की अंग कान्ति स्वरूप व इन्हीं की इच्छा शक्ति के हाथों का यंत्र परम रसमय अप्राकृत काल हूँ। दिव्य धाम श्रीवृन्दावन में मेरी सर्वत्र गति एवं स्थिति है। वेदों ने मुझे ही सनातन, परमानन्द स्वरूप, परात्पर परब्रह्म सर्वसाक्षी कहा है। श्रीकृष्ण के श्रीअंग से उत्पन्न होने के कारण मैं प्राकृत त्रिगुणों से रहित पूर्णतया निर्गुण हूँ फिर भी अपने स्वरूपभूत अप्राकृत गुणों से सदैव प्रियतम श्रीकृष्ण की सुख सेवा करके सेवा सुख लाभ करता हूँ। मैं श्रीकृष्ण की अंग कान्ति होने से तेजोमय हूँ। मेरा पाञ्चभौतिक शरीर नहीं है। इसलिये साधारण नेत्रों से ऋषि, मुनि व देवता भी मेरा दर्शन करने में असमर्थ हैं।

मैं न पुरुष हूँ और न ही नारी। फिर भी थोड़े समय के लिये मेरे एक भाग रात्रि को ब्रज गोपियाँ 'निशा सखी' समझने लगती हैं। मेरा कोई निश्चित नाम व रूप नहीं है। अपने प्रियतम की इच्छा जानकर कभी मैं प्रातः, कभी दोपहर, कभी संध्या तो कभी निशा का रूप धारण कर लेता हूँ। अपने प्रियतम श्रीकृष्ण व उनके प्रियजनों को लीला रस प्रदान करने के लिये मैं दिन–रात, सर्दी व गर्मी की ऋतु एवं युग–मन्वन्तर आदि अनेकों रूप धारण कर लेता हूँ। इस टिमटिमाते प्राकृत सूर्य से मेरा कोई लेना–देना नहीं है। मैं तो अनन्त ब्रह्माण्डों के अनन्त सूर्यों का आधार हूँ। सूर्य की भला कहाँ समर्थ जो मुझे सत्ता दे सके। ये तो स्वयं ही मेरे एक छोटे से अंश से सत्तावान है। यह सत्य है कि इस अप्राकृत, चिन्मय धाम श्रीवृन्दावन में भी एक अप्राकृतिक, चिन्मय सूर्य है। यह भी मेरी ही तरह लीला महाशक्ति का परिकर है। मैं श्रीकृष्ण की अंगकान्ति से प्रकट हुआ स्वयं प्रकाशमान हूँ, इनसे ही मैं सत्तावान हूँ। मुझसे स्वतः ही एक उज्ज्वल, स्वप्रकाशमान ज्योति निकलती रहती है। श्रुतियों ने मेरी उसी प्रकाशमान ज्योति का निर्देश किया है–

**न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारका नेमा विद्युते भान्ति कुतोऽयमग्नि**

**तमेव भान्त मनोभाति सर्वम् तस्य भासा सर्व इदम् विभाति**

(कठौपुनिषद् 2/2/15)

गीता भी मेरे इसी स्वरूप को इंगित करती है –

**न तद्भासते सूर्यो न शंशाको न पावकः**

यद्यपि मैं सर्वव्यापक हूँ लेकिन मेरा प्रत्यक्ष अनुभव केवल दिव्यधाम में ही होता है। मेरी इस स्वप्रकाश ज्योति के एक अंशमात्र को पाकर ही प्राकृत जगत के सूर्य, चन्द्र, तारामण्डल, अग्नि, विद्युत आदि प्रकाशमान होते हैं। फिर भी ये सब मिलकर भी मेरी प्रकाशमान आनन्दमयी प्रभा का स्पर्श नहीं कर सकते।

इस अप्राकृतिक, चिन्मय ब्रज वृन्दावन धाम के सूर्य, चन्द्र, तारागण व नक्षत्र जड़ जगत के सूर्य, चन्द्र, तारागण व नक्षत्रों की तरह प्राकृतिक नहीं हैं। हम सभी के रूप, रंग, आकार, प्रकार, स्थिति, गुण, चेष्टा भाव सभी प्रियतम श्रीकृष्ण की जैसी लीला होती है, उसी के अनुसार बदलते रहते हैं। हम सभी लीला शक्ति के अनुसार श्रीकृष्ण व उनके नित्य परिकरों को सुख प्रदान करते रहते हैं। श्रीकृष्ण को यदि रात्रि की आवश्यकता हो तो मैं रात्रि स्वरूप बन जाता हूँ। जब तक प्रियतम चाहेंगे तब तक मैं रात्रि ही बना रहूँगा चाहे माया जगत में युग ही क्यों न बीत जाएँ। यदि उन्हें उसी समय दोपहर चाहिये तो मैं उनके संकल्प करते ही दोपहर का रूप धारण कर लेता हूँ। यदि कहीं उन्हें एक ही स्थान पर, एक ही समय में दोपहर व मध्य रात्रि दोनों चाहिये तो मेरे लिये यह भी असंभव नहीं है। प्रियतम की इच्छानुसार मैं दोपहर के बाद संध्या तो कभी दोपहर के बाद सुबह बन जाता हूँ। प्राकृतिक काल की तरह मैं प्रकृति के नियमों में बँधा नहीं हूँ। श्रीकृष्ण की रुचि के लिये यदि मुझे युग परिवर्तन भी करना होता है तो मुझे उनके संकेत का आभास ही होना आवश्यक होता है। मुझे एक क्षण भी नहीं लगता मैं कलियुग से सतयुग में बदल जाता हूँ। ये चारों युग मेरे वस्त्र ही तो हैं जब चाहे जो धारण कर लेता हूँ।

सतयुग से कभी द्वापर, कभी त्रेता तो कभी कलियुग रूप धारण कर लेता हूँ। कभी- कभी तो एक ही साथ दो-तीन या चारों युगों का

रूप धारण कर अपने प्राणनाथ की रुचि को पूर्ण करना मेरे लिये सहज है। नन्दभवन में तो यह विचित्र लीला प्रतिदिन ही होती रहती है। जब नन्द बाबा प्रभु के नारायण रूप की पूजा, अर्चना करते हैं तो उस समय मैं सतयुग के रूप में बाबा के समक्ष उपस्थित होता हूँ। उसी समय नन्द भवन के ही दूसरे भाग में जब मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण बाल लीला करते हुए मैया से क्लेश करते मचलते हैं तो वहाँ मैं कलियुग का रूप धारण कर लेता हूँ। प्रियतम की इच्छा से मैं उन्हीं की बुद्धि में प्रवेश कर उनसे पूर्णतया झूठ बुलवाता हूँ। कभी-कभी उनसे चोरी करवाता हूँ। उनकी बुद्धि में परस्त्री के प्रति आकर्षण जगा देता हूँ। यहाँ तक कि सती साध्वी गोपियों के चित्त में भी लोक, वेद मर्यादा के विरूद्ध भी कार्य करने की प्रवृत्ति उत्पन्न कर देता हूँ। ध्यान रहे, वह मेरा कलिकाल रूप भी प्राकृत नहीं होता। वह प्रेमानन्दमयी भगवद् लीला का ही एक अप्राकृत उपकरण होता है।

मेरे प्रियतम श्रीराधा माधव युगल सरकार सर्वसमर्थ हैं। वे जब चाहें, जो चाहें मुझसे करवा लेते हैं। वे परिपूर्णतम हैं। दिव्यधाम गोलोक एवं वृन्दावन धाम में तो उनका नित्य निवास है ही किंतु कभी- कभी अपनी मौज में चतुर्भज रूप धारण कर लेते हैं। उस समय स्वामिनी श्रीराधा ही लक्ष्मी के रूप में प्रकट होती हैं। मेरे प्रियतम विलक्षण लीलामय हैं। जब वे श्रीराम रूप में लीला विस्तार करते हैं तो श्रीराधा सीता रूप से अपने प्रियतम की लीलाओं में सहयोगिनी बन जाती हैं। जहाँ-जहाँ भी मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण अवतरित होते हैं वहाँ-वहाँ श्रीराधा छाया व कला के रूप में साथ-साथ होती हैं। मैं भी इनके साथ ही कालमान बना इनसे संलग्न रहता ही हूँ।

मेरे प्रियतम प्रेम स्वरूप हैं, प्रेम की निधि हैं, प्रेम से ही प्रकट होते हैं, प्रेमियों के साथ ही रहते हैं। प्रेमियों को सुख देने तथा उनके साथ प्रेममयी लीला करने में ही इनको आनन्द मिलता है। मैं उनसे अपने को ओत-प्रोत कर कृतकृत्य हो उठता हूँ। मेरे कण -कण में इनकी स्थिति रहती है। फिर भी इनका जो रूप, सौन्दर्य, प्रेम धाम वृन्दावन में प्रकट होता है वह ओर कहीं भी मैंने नहीं देखा। प्रेम का भूखा मैं भी इन दोनों

बिहारी–बिहारिन को अपना तन, मन, प्राण समर्पित कर वृन्दावन को एक पल भी नहीं त्यागता। यह ब्रज वृन्दावन मेरा हृदय है। मेरे हृदय मन्दिर में वृन्दावन गोप–गोपीजन, श्रीराधा, श्रीकृष्ण की प्यारी गायें, गोवर्धन, यमुना, कुंज, निकुंज, सरोवर आदि सबको बैठाये यहाँ बिहार करते राधा माधव पर अपने प्राण न्यौछावर करता रहता हूँ।

मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण की मुझ पर ऐसी कृपा है कि वे स्वयं तो श्रीवृन्दावन धाम में ही अपने सगुण साकार रूप से निवास करते हैं किंतु अपना सर्वव्यापता वाला गुण मुझे प्रदान कर निर्गुण निराकार ब्रह्म रूप से मेरी प्रतिष्ठा कर देते हैं। प्रियतम श्रीकृष्ण का तेजोमय स्वयं प्रकाश रूप ब्रह्म मैं ही हूँ। इसलिये गीता में मेरे प्रियतम स्वयं को ब्रह्म की प्रतिष्ठा कहकर मेरा ही उद्घोष करते हैं। कितने कृपालु हैं ये लीलाधर।

सदा ही भजूँ राधिका कृष्ण जोरी, जपूँ नाम प्यारो बँध्यो प्रेम डोरी।
नहीं अंत आदि सदा सम्प्रतिष्ठा, सजी सोहनी सूरती श्याम गौरी।
नहीं प्रेम की कोइ सीमा दोउन में, सदा वर्धमानी करें चित्त चोरी।
बिहारी बिहारिन निकुञ्जन निहारूँ, यही चित्त की कामना एक मोरी।
करूँ नित्य पूजा बिठाके हृदै में, करे दास विनती बहोरी बहोरी।

# भजन–चिंतन व सद्गुणों का विकास

जिस प्रकार संत संग का फल भजन– चिंतन है ठीक उसी प्रकार भजन–चिंतन का फल मानव में मानवीय गुणों अर्थात् सद्गुणों का विकास है। भजन–चिंतन का आपके द्वारा संपादित होना इस बात को सिद्ध करता है कि जीवन में संत संग हुआ है। यदि संत संग करके भी भजन–चिंतन नहीं हो रहा है तो इसका अर्थ यही हो सकता है कि अभी संत संग ही नहीं हुआ है। यदि संत संग हुआ है तो आपकी श्रद्धा नहीं हुई। संत के प्रति कुछ–न–कुछ दोष दृष्टि रही होगी क्योंकि ऐसा हो नहीं सकता कि श्रद्धापूर्वक किया गया संत संग भजन–चिंतन न कराये। भोजन करने से क्षुधा निवृत्ति और पानी पीने से प्यास की निवृत्ति न हो क्या कभी ऐसा हो सकता है? भोजन, पानी ग्रहण का फल ही है क्षुधा, पिपासा का निवृत्त होना। ठीक इसी प्रकार संतों के श्रद्धापूर्वक सेवन का फल है भजन–चिंतन।

जीवन में यदि भजन–चिंतन होने लग गया तो भजन–चिंतन के साथ–साथ आपका जीवन परिवर्तित होने लगेगा। हृदय सद्गुणों का आगार बनने लगेगा। एक–एक करके अवगुण मिटने लगेंगे। चित्त में विशेष प्रकार की शांति व आनन्दवर्धन होने लगेगा। तन–मन में सत्त्वगुणों का संचार होने लगेगा। सभी जीव अपने से लगने लगेंगे। जो प्रेम केवल वासना, स्वार्थ व अहंकार में सिमटकर अपवित्र हो चुका था वह अपने शुद्ध रूप को प्राप्त हो जायेगा, विस्तृत होने लगेगा। आपके लिये कोई भी द्वेष पात्र नहीं रहेगा। सभी आपकी सद्भावना के पात्र बनने लगेंगे। दया, क्षमा, समता, संतोष, निष्कपटतता, सहनशक्ति, धर्मनिष्ठा, प्रेम, श्रद्धा, भगवद्विश्वास आदि–आदि सद्गुण हृदय सदन में डेरा डाल स्थायी रूप से निवास करने लगेंगे। समस्त दैवी सम्पदा धीरे–धीरे अंतःकरण में अवतरित होने लगेगी। गीता जी के सोलहवें अध्याय के प्रथम श्लोक में दैवी सम्पदा के रूप में जिन–जिन सद्गुणों की चर्चा भगवान् ने की है, वे समस्त सद्गुण भजन–चिंतन करने वाले भक्त की निजी सम्पदा बनने लगेंगे।

जिस प्रकार परिश्रमी व भाग्यवान् के पास सम्पत्ति स्वयं ही खिंची

चली आती है उसी प्रकार भजन–चिंतन करने वाले भक्त के पास सद्गुण रूपी दैवी सम्पत्ति उसके हृदय रूपी खजाने को भरने बरबस खिंची चली आती है।

भजन–चिंतन का फल है हृदय में सद्गुणों का विकास। यदि भक्त के हृदय में सद्गुणों का विकास नहीं हो रहा है तो आँख मूँद कर समझ लो कि भजन–चिंतन नहीं हो रहा है। भजन–चिंतन का मात्र ढोंग ही हो रहा है।

कोई कह सकता है कि अमुक व्यक्ति नित्य प्रति नियमपूर्वक महामन्त्र या युगल महामन्त्र की चौंसठ माला या इससे अधिक करता है व एक अथवा दो घंटा या इससे अधिक समय आसन पर स्थित बैठकर भगवद् चिंतन करता है फिर भी स्वभाव में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता, वही ढाक के तीन पात।

इसके उत्तर में मैं यही कहना चाहूँगा, इसके मुख्य रूप से दो ही कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि उसको भजन–चिंतन करते अभी अधिक समय नहीं हुआ होगा। अभी उसके कुसंस्कार भजन– चिंतन पर हावी हो रहे हैं, भारी पड़ रहे हैं। यदि ऐसी स्थिति में उसने भजन–चिंतन नहीं छोड़ा। साधन की निरन्तरता ज्यों–की–त्यों बरकरार रही और यह बरकरारी कहीं लम्बी अवधि तक वह साधक निभा ले गया तो उसके वह कुसंस्कार जो उसकी साधना पर भारी पड़ रहे थे क्षीण होने लगेंगे और अंत में वह जीत जायेगा। स्वभाव में आश्चर्यजनक परिवर्तन होने लगेगा। जिसको वह स्वयं ही नहीं सारी दुनिया देखेगी। जब चाँद क्षितिज पर चढ़ता है तो सभी को दिखने लगता है। चाँद को कहना नहीं पड़ता कि मैं उदय हो गया हूँ। ज्यों–ज्यों चाँद चढ़ता जाएगा त्यों–त्यों अपनी चमक का विस्तार करता जायेगा। अपनी चमक से सबको चमत्कृत करने लग जायेगा।

इसी प्रकार श्रद्धा, विश्वासपूर्वक, निष्ठा सहित, दृढ़निश्चय रखकर भजन–चिंतन करता हुआ सच्चा साधक अपने कुसंस्कारों की होली जलाकर व समस्त सद्गुणों से स्वयं को अलंकृत कर अपने प्रभु को आकर्षित कर लेता है लेकिन यह तभी सम्भव हो सकता है जब वह

सत्संग से लगातार सम्पर्क बनाये रखे। यदि साधक को सत्संग न मिले तो वह अपने कुसंस्कारों से, अवगुणों से हार मान लेगा क्योंकि सत्संग के अभाव में साधक अपने भजन, साधन को अधिक दिन स्थिर नहीं रख सकता। यदि साधक संत के सम्पर्क में लगातार अधिक समय तक रहेगा तो साधन होता रहेगा और कुछ समय बाद हृदय में सद्गुणों का विस्तार होता चला जायेगा।

भजन-चिंतन करते हुए भी स्वभाव मधुर नहीं बन पा रहा है, हृदय में सद्गुणों के स्थान पर अवगुण डेरा जमाये बैठे हैं जो जाने का नाम ही नहीं ले रहे तो इसका दूसरा कारण है दस नाम अपराध क्योंकि नामापराधी के जीवन में पहली बात तो भजन-चिंतन होता ही नहीं। यदि थोड़ा बहुत हो भी जाए तो वह फलित नहीं होता। मैंने किसी संत से सुना है या कहीं पढ़ा है कि नाम अपराधी उसमें भी संत, गुरु व भक्त अपराधी यदि उसने अपने अपराध के प्रायश्चित के रूप में उनसे क्षमा नहीं माँगी या विनम्रतापूर्वक सेवा द्वारा उनको संतुष्ट नहीं किया तो परिणाम स्वरूप वह अपराधी घोर नास्तिक तक बन सकता है चाहे वह पूर्व में कितना भी बड़ा विद्वान् या भक्त क्यों न रहा हो। दस नाम अपराध हैं-

1. संत निन्दा-संतों व नाम निष्ठ भक्तों की निन्दा करने व सुनने से नाम महाराज रुष्ट हो जाते हैं। वैसे तो निंदा किसी की भी नहीं करनी चाहिये। उनमें भी संतों की तो भूल कर भी न करें। कई बार देखने में तो संत साधारण से लगते हैं लेकिन भीतर से इतने महान् भजनानन्दी होते हैं कि कोई सोच भी नहीं सकता। संत अधिकतर गुदड़ी के लाल ही हुआ करते हैं।

2. भगवान् के विष्णु, शिव आदि नामों व रूपों में ऊँच नीच की कल्पना करना बहुत बड़ा पाप है।

3. गुरु का अपमान करना-जब हम नाम जप करते हैं तो गुरु सेवा करने की क्या जरूरत है? गुरु की आज्ञा पालन करने की क्या जरूरत है? कल्याण तो नाम जप से होगा, गुरु इसमें क्या करेगा? गुरु सेवा क्यों? इस प्रकार सोचना भी नाम अपराध है। जिस गुरु महाराज से हमको नाम मिला है यदि उनका तिरस्कार करेंगे तो नाम महाराज रूष्ट हो

जायेंगे। यदि गुरु में कोई दोष भी दिखाई दे तो निन्दा न करो। जिससे कुछ भी पाया है, पारमार्थिक बातें सीखी हैं, भगवान् की तरफ रूचि हुई, चेत हुआ, होश हुआ, नाम जप में लगे हैं यदि उनकी निन्दा करोगे तो नाम की कृपा से वंचित रहना पड़ेगा।

4. वेद शास्त्रों को न मानना – जब हम हरि नाम जप कर रहे हैं तो शास्त्रों के पठन–पाठन की क्या आवश्यकता है? वैदिक कर्मों की क्या आवश्यकता है? ऐसा मानना नामापराध है।

5. नाम महिमा को अर्थवाद मानना – भगवान् के नाम की जो इतनी महिमा कही गयी है, यह केवल स्तुति मात्र है। असल में इतनी महिमा नहीं है। इस प्रकार मानना नामापराध है।

6. नाम की महिमा बार–बार सुनकर भी नाम जप न करना नामापराध है।

7. यज्ञ, दान, तप आदि शुभ कर्मों को नाम के समान मानना भी नाम अपराध है क्योंकि कोई भी शुभ कर्म हरि नाम के बराबर नहीं हो सकता।

8. बार–बार हरि नाम की अवहेलना करने वालों को उनके न चाहने पर भी नाम की महिमा सुनाना नाम अपराध है क्योंकि वह सुनने पर बार–बार नाम की निन्दा करेगा जिससे नाम का अपमान और अपराध होगा।

9. विहित कर्मों का त्याग – जब सबसे ऊँचा हरि नाम है, नाम जप से सब कुछ हो जाता है तो फिर अन्य शुभ कर्म जैसे पूजन, हवन, तर्पण, श्राद्ध आदि क्यों करें? ऐसा मानकर शुभ कर्मों का त्याग करने से नामापराध बनता है।

10. नाम का आश्रय लेकर पाप करना – भगवान् का नाम जप करने से पापों का नाश तो हो ही जाता है, चलो थोड़ा पाप कर लें बाद में नाम जप कर लेंगे। ऐसा करना नामापराध है क्योंकि उसने हरि नाम को पापों की वृद्धि में हेतु बनाया है।

उपर्युक्त दस नाम अपराधों से मुक्त होकर भजन–चिंतन करने वाले साधक का जीवन परिवर्तित न हो, हृदय में सद्‌गुणों का विकास न

हो ऐसा हो ही नहीं सकता।

भगवन्नाम में पाप नाशक शक्ति तो है ही इसलिये मैं जो भी पाप करूँगा वह भजन से कट जायेगा। ऐसा मानने वालों की संख्या भक्त समाज में कम नहीं है। नाम में स्वाभाविक ही पापनाशक शक्ति है। इसका अर्थ यह नहीं हैं कि आप नाम की ओट लेकर जैसा चाहें वैसा पाप करें। भगवान् के नाम को पाप करने का साधन बना लेना बहुत बड़ा अपराध है। यह अक्षम्य है। इसका फल यह होगा कि आपको महाभयानक दंड भोगना पड़ेगा। हाँ, यदि अंजान में कोई पाप हो जाये तो पश्चात्ताप करते हुए प्रायश्चित के रूप में पाप से मुक्त होने के लिये जाप कर सकते हैं और भविष्य में दोबारा वह पाप न बने इसके लिये दृढ़ संकल्प करना चाहिये।

इस प्रकार जब आप अपराधों से शून्य होकर जप – चिंतन करेंगे, प्रभु कृपा से अवश्य ही मन पवित्र होगा, सद्‌गुणों का विकास होगा। यही तो भजन का फल है। गीता के 12वें अध्याय के अंतिम आठ श्लोकों में भगवान् ने अपने प्रिय भक्तों के जो – जो लक्षण बताये वो समस्त लक्षण धीरे – धीरे भजन – चिंतन के प्रभाव से भक्त हृदय में आने लगेंगे।

नाम अपराधों से शून्य होकर व लम्बी अवधि तक नेम व प्रेम पूर्वक भजन – चिंतन करने वाले साधकों के जीवन में सद्‌गुणों का विकास होगा! होगा!! होगा!!! यह अनिवार्य है। चाहे साधक गृहस्थ हो या विरक्त इसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। सद्‌गुणों का विकास ही भजन – चिंतन का पैमाना है।

**गुरु गोविन्द कृपा सोइ पावैं ।**
**दीन शरण है आज्ञानुवर्ति, जे जन जीवन शुद्ध बनावैं ।।**
**दोष पराये कबहुँ न देखत, हर में हरि देखि सुख पावैं ।**
**जप किर्तन सतसंग कथा में,दृढ़विश्वास करत चित्त लावैं ।।**
**निर्ममता समता सबसों करि, देत मान अभिमान नसावैं ।**
**करुण दास ऐसे भगतन कूँ, श्री गुरु गोविन्द हिय बसावैं ।।**

# निकुंज में होली रस विलास

श्रीप्रिया-प्रियतम को आत्यांतिक आनन्द प्रदान करने की उत्कट भावना से सखियाँ नित्य नई-नई रसमयी केलि का विधान करती रहती हैं। इसी प्रकार चिन्मय धाम श्रीवृन्दावन भी युगल रसिक को रस में विभोर करता हुआ उनके सुख के लिये वातावरण उपस्थित कर सदैव सेवा में तत्पर रहता है। रसमयी सखियाँ भी नित्य विहार रस सागर में निमग्न श्रीलाड़िली-लाल की रसमयी छवि का दर्शन करती हुई आनन्द के सागर में सराबोर रहती हैं। वृन्दावन के निकुंजों में यह प्रेम रस धारा नित्य -निरन्तर प्रवाहित होती रहती है।

श्रीश्यामा-श्याम को होली का सुख प्रदान करने के लिये आज सभी सखियाँ एकत्रित हुई और परस्पर कहने लगीं-

**भल आये भल आये री दिन भाँवते होरी के होरी ।**
**सब मिलि मंगल विमली खेलौ भरिभरि अबीर गुलालन झोरी ।।**
**नित्य नयौ आनन्द उपजावौ गावौ जस जोरी के जोरी ।**
**श्रीहरिप्रिया लड़ाय चाय सों सफल करो जीवन अलियों री ।।**

(श्रीमहावाणी उत्साह सुख-16)

सखियों! आज होली खेलने का मनभावन अवसर आया है। सब मिलकर अबीर गुलाल की झोलियाँ भर-भरकर मंगलमयी होली खेलो। रसिक दम्पति श्रीश्यामा-श्याम के यश गा -गाकर नित् नये आनन्द की अभिवृद्धि करो। युगल को लाड़-लड़ाकर अपने जीवन को सफल करो। इस प्रकार अष्ट सखियों का आदेश सुनकर सखी परिकर एकजुट होकर रस होली खिलाने श्रीश्याम-श्याम के सन्मुख उपस्थित हुआ।

**रंगरँगीली आदि दै मिलि, सब सखी सहेलि ।**
**आईं खिलावन रँगभरी, रसहोरी की केलि ।।**

(महावाणी उत्साह सुख-29)

## बसंत होली कुंज की संरचना

यह कुंज मोहन महल के उत्तर दिशा में स्थित है। श्रीरंगदेवी सखी

की कुंज के पिछले भाग में वन विभाग के अंतर्गत श्रीयमुना की तरफ होली कुंज की अनुपम रचना है। विविध मणियों से जड़ित कंचनमयी बारह द्वारी कुंज स्फटिक मणि के विशाल मण्डल पर शोभित हो रही है। इसके चारों ओर गोलाकार मार्ग है जिसमें आठ मार्ग जुड़े हैं जो आठों दिशाओं में स्थित द्वारों तक आते हैं। मणिमय मार्गों के दोनों ओर पुष्प गमलों की सजावट है। मार्गों के दोनों ओर विविध प्रकार के कमल पुष्पों से परिपूरित नहर (छोटी-छोटी सरिताएँ) प्रवाहित हो रही हैं। आठों द्वार विविध पुष्प, बंधनवार व ललिताओं से सुसज्जित हैं। कुंज के आसपास सुकोमल दुर्वा (गद्देदार घास), जौं, केसर व पीत पुष्पों की क्यारियाँ हैं। अंत में बौरयुक्त आम व पीत पुष्पों के वृक्षों की पंक्तियाँ हैं। प्रत्येक दो-दो मार्गों के मध्य कंचनमय मणि जड़ित सीढ़ियों से संयुक्त चार सरोवर हैं जो चारों ओर वृक्षों व लताओं पर शुक, कोयल, मोर आदि पक्षियों के कलरव से मुखरित हो रहे हैं।

प्रातःकालीन सेवा सम्पन्न कर सखियाँ श्रीयुगल को लीला स्थली का अवलोकन कराती हुई कुंज के स्थित सिंहासन पर पधराती हैं। आठों दिशाएँ होली के गीतों व वीणा, मृदंग आदि साजों से गुंजायमान हो रही हैं। होली की समस्त सौंज सामग्री से सुसज्जित मनोहर वातावरण को देख श्रीप्रिया-प्रियतम का उत्साह चौगुना हो गया है। श्रीयुगल सरकार की आज्ञा से सखियाँ होली खेलने तत्पर हो गयीं। सखियों के दो पक्ष हो गये। किशोरी जू के पक्ष में श्रीरंगदेवी जी, सुदेवी जी, ललिता जी व विशाखा जी हो गयीं और लाल जी के पक्ष में श्रीचम्पकलता जी, चित्रा जी, तुंगविद्या जी एवं इंदुलेखा जी हो गयीं। ये आठों यूथेश्वरियाँ अपने-अपने परिकर के साथ मैदान में उतर आयीं। प्रेम, रस, रंग में रंजित सखियों को संग लेकर श्रीश्यामा जू '**रंग हो हो होरी है**' की मधुर ध्वनि करती हुई होली खेलने लगी। श्रीप्रिया जू व सखियों के कर-कमलों में गुलाब पुष्पों से मंडित छड़ियाँ हैं। दोनों दलों की सखियाँ खेल के उपकरण लिये झूमती-इतराती बड़ी शान से आमने-सामने हो रही हैं।

**श्रीस्यामा जू खेलत रंगभरी रँग हो हो हो हो हो होरी ।**
**रंग रँगीली सहचरि सँग लियें हाथनि फूल गुलाब छरी ।।**

**एक ओर कीने मनमोहन तिनकी सखी तिन ओर करी ।**
**रमकि – रमकि उपकरन लियें कर झमकिझमकि आईं सबरी ।।**

श्रीश्यामा जू की आज्ञा पाते ही संग की सखियों ने सुगंधित अबीर गुलाल से लाल जी के यूथ पर प्रहार प्रारम्भ कर दिया। फिर तो प्रीतम के पक्ष की सखियाँ भी आवेशित होकर रंग – बिरंगे गुलाल की भारी वर्षा करने लगी। परस्पर गुलाल की मार में दोनों ओर से अबीर – गुलाल की ऐसी मार मची जिससे अंधकार सा छा गया। फिर सखियों ने केसर, कस्तूरी, चन्दन आदि सुगंधित द्रव्य मिश्रित रंगभरी पिचकारियों से रंग की झड़ी ही लगा दी। श्रीलाल जी श्रीप्रिया जू पर निशाना साधकर पिचकारी की धार चलाते हैं और फिर निहारते हैं। उधर प्यारी जू पिचकारी की धार को साड़ी के सहारे रोककर अपने श्रीमुख को बचा रही हैं। दोनों यूथ बलपूर्वक एक दूसरे को ढकेल – ढकेलकर व अपनी ओर खींच – खींचकर रसमयी क्रीड़ा करते हुए रसमत्त हो रहे हैं।

एक तरफ सखियाँ ढफ आदि बजा रही हैं। कुछ सखियाँ होली के गीत व गालियाँ गा – गाकर मस्त हो रही हैं।

**आज निकुञ्ज मची रँग होरी ।**
**इत श्यामा उत श्याम बिहारी, रंग भरि सखियाँ दोउ ओरी ।।**
**केसर कीच सने नख सिख लौं, एक बरन भई सुन्दर जोरी ।**
**लखि सहचरी कोउ समझ सके नहिं,को सांवर को कञ्चन गोरी ।।**
**भरि पिचकारी ऐसी मारी, प्यारे ने प्यारी रंग बोरी ।**
**मूँठ गुलाल दई जब मोहन, सखियन बीच छिपी जा दोरी ।।**
**ओचक – ओचक ओट सखिन की, कर गुलाल लै चली किशोरी ।**
**ज्यौं मोहन ढ़िंग आई छल सौं, गाल गुलाल मल्यो बरजोरी ।।**
**विहँसैं सहचरि ताली दै पुनि, नाचैं गावैं तानन तोरी ।**
**करूण दास मन मगन विचारैं, कैसी अद्भुत प्रीती डोरी ।।**

दूर खड़ी गायन – वादन करने वाली सखियों को यह समझ में ही नहीं आ रहा है कि कौन सी सखी किस पक्ष की है क्योंकि होली के रंग में रंगी समस्त सखियाँ एक जैसी दिखाई दे रही हैं। गुलाल के अन्धकार का

लाभ उठाकर श्रीलाल जी सबकी आँख बचाते हुए श्रीप्रिया जी पर पिचकारी की धार छोड़ते हैं। अबकी बार श्रीप्रिया जी अपने आपको बचा नहीं पाई लेकिन ज्यों ही द्रुत गति से श्रीलाल जी गुलाल की मूठ भरकर प्रिया जी पर मारने लगे तुरंत प्रिया जी सावधान होकर अपनी पक्ष की सखियों के यूथ में छिप गई। प्रिया जी के मन में उमंग उठी कि किसी बहाने से अपने प्राण प्रियतम के मुखारविंद पर गुलाल मल दूँ। धीरे – धीरे एक सखी की ओट करते हुए सखियों की भीड़ में से होती हुई दोनों हाथों में गुलाल लिये लाल जी के समीप पहुँच गई। इधर लाल जी दोनों ऐड़ियाँ उठाकर उचक – उचककर सखियों की भीड़ में प्रिया जी को पहचानने की कोशिश करने लगे। इतने में लाल जी की आँखें बचाते हुए श्रीप्रिया जी ने अवसर पाकर लाल जी के दोनों गालों को गुलाल से लाल – पीला कर डाला। यह देख सखियाँ ताली बजा – बजाकर हँसती हुई उच्च स्वर से गाने व नाचने लगी। प्रिया जी की इस होशियारी पर रीझकर श्री लाल जी अपनी प्राण संजीवनी बूटी स्वरूप श्रीप्रिया जू को अंक में भर लेते हैं।

**उठी उमंग उर अलबेली के**
**मुख लेपन मिस आनि अरी**
**श्रीहरिप्रिया निसंक अंक**
**भरि लीनी प्राण संजीवन जरी**

**(महावाणी उत्साह सुख 27)**

समस्त वृन्दावन अनुराग रंग से रंजित हो उठा। वास्तव में होली की क्रीड़ा का यह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता।

यह नित्य निकुंज की रसमयी लीलाओं का अनुपम आनन्द सखी, सहचरि एवं श्रीयुगल कृपा से ही साध्य है।

**यह सुख मुख कछु कहत न आवै,**
**बिन श्री हितू कृपा को पावै।**
**श्रीहरिप्रिया सकल सुख सार,**
**लाल लाड़िली नित्य विहार।**

# कन्हैया! सुनो हमारी बात

कन्हैया! आज दिल की बात होठों पर आने को मचल रही है। सुनोगे? हमने सुना है कि चींटी के पग में घुंघरु बजें वो भी आपके कान सुन लेते हैं। सुना तो ये भी है कि आपके कान हृदयस्थ उन भावों को भी सुन लेते हैं जो अभी मुखरित नहीं हुए। पर यहाँ मुश्किल तो ये है कि आपने अपने कर्णपुटों में न जाने कैसा विचित्र स्वभाव रूपी यन्त्र लगा रखा है जो श्रद्धा, विश्वास व प्रेम विहीन शब्दों को आप तक पहुँचने ही नहीं देता। जिसका परिणाम होता है प्रार्थना का बेअसर होना।

यद्यपि आप अन्तर्यामी हैं, सर्वज्ञ हैं बिना जनाए भी सब कुछ जान लेते हैं। लेकिन आपके स्वभाव का क्या किया जाए? आप श्रद्धा, विश्वास व प्रेम से सनी बात को ही सुनते हैं, नहीं तो जान कर भी आप अनजान से बने रहते हैं, तटस्थ ही रहते हैं। अब मैं किस मुख से कहूँ कि आप मेरे लिए ही सही, थोड़ी देर के लिए स्वभाव बदल लो। आपने संतों व शास्त्रों के माध्यम से बताकर न जाने कितनी बार मुझे मेरा स्वभाव दोष बदलने के लिए कहा। लेकिन मैं ढीठ बनी रही। आपकी बात सुनकर भी अनसुनी करती रही। आज अपनी बात आपको सुनाने चली हूँ और स्वयं आपकी बात मानने को तैयार नहीं हूँ। लज्जा भी मुझसे लजाने लगी होगी।

कन्हैया! जानते हो, ये सब जानते हुए भी कि आप बिना श्रद्धा, विश्वास व प्रेम से कही बात को नहीं सुनते, फिर भी मैं क्यों अपनी बात आपको सुनाने चली हूँ? क्योंकि हमें संतों से आपकी एक कमजोरी पता चली है। वो ये कि बिना श्रद्धा, विश्वास व प्रेम के भी आप सुन लेते हैं यदि कोई प्रार्थना बार-बार की जाए तो। अब देखिए, श्रद्धा, विश्वास व प्रेम तो मुझमें है नहीं, कम-से-कम मैं बार-बार अपनी बात आपको सुनाकर आपको अपने लिए सक्रिय तो कर ही सकती हूँ। मेरे लिए धारण की हुई आपकी उदासीनता को तो मैं मिटा ही सकती हूँ। आपको तटस्थ न रहने दूँगी। यदि आपको प्रसन्न नहीं कर सकती तो बोर तो कर ही सकती हूँ। मेरी बार-बार पुकार कुछ तो असर करेगी ही और फिर बार-बार की पुकार पर आपके संतों की हाँ भी तो सम्मिलित है।

**राम राम रटते रहो, जब लगि घट में प्रान ।**
**कबहुँ तो दीनदयाल की,भनक पड़ेगी कान ।।**

एक बार आपने ही तो कहा था–

**मोर वचन चाहे पड़ जाए फीका, संत वचन पत्थर की लीका।**

भला आप अपने प्यारे संतों की 'हाँ' में 'ना' कैसे मिला सकते हैं, संत आपके हृदय जो ठहरे।

**कन्हैया सुनो हमारी बात**, अब मैं क्या कहने जा रही हूँ–

'हे कन्हैया! अनादि काल से आपके बिना रहते–रहते आपके बिना रहने की आदत ही पड़ गई है। तभी तो इतना सत्संग सुनने पर भी दिल आपके लिए व्याकुल नहीं होता। हाँ, इतना तो है आपके संतों का संग करते–करते अब कुछ–कुछ आपका अभाव अखरने लगा है। थोड़ा–थोड़ा आपको चाहने लगी हूँ और आपको पाने के लिए आपकी तरफ कुछ–कुछ चलने भी लगी हूँ। लेकिन कन्हैया! आपको चाहने व आपकी तरफ बढ़ने की चाल इतनी धीमी है कि आप तक पहुँचने में कोटि–कोटि कल्प का समय भी कम पड़ जाएगा। ऐसा सोचकर उदास हो जाती हूँ।

कन्हैया! हमने आपके प्रेमी संतों से सुना है कि जब कोई आपकी तरफ चलता है तो आप भी उसकी तरफ चलने लगते हैं, जिससे दूरी जल्दी समाप्त हो जाती है।

हे प्यारे! मेरी आपसे इतनी ही प्रार्थना है या तो आप मेरी चाल को तेज कर दो या फिर अपनी ही चाल तेज कर लो। कहीं ऐसा न हो जाय कि आपसे मिलन की देरी, मेरी उदासी को बढ़ाकर मेरी धीमी सी चाल को भी न रोक दे और कहीं आपसे ओर दूर न हो जाऊँ।

कन्हैया! यदि आप मेरी इस पुकार को सुनकर चलने की तैयारी करने लगे हो तो एक बात मत भूलना। देखो! मेरे दिल में एक चाह तो है कि मैं आपको सुख दूँ, सुखी देखूँ। लेकिन आपको सुखी करने के लिए मेरे पास न तो कोई गुण है और न ही किसी प्रकार की कोई योग्यता। किसी भी प्रकार से आपको सुखी करने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है। इसलिए रासेश्वरी श्री राधा रानी को अपने साथ जरूर लाना, उन्हें न भूलना। तभी तो मैं आपको सुखी देख पाऊँगी। उन प्रेममयी के बिना आपको कौन सुखी कर सकता है?

आप नित्य बिहारी हैं, बिहार ही आपका आहार है। मेरे पास बिहारी

रूप से ही आना। एक बात ओर है, उसको भूल से भी न भूलना। आपके नित्य बिहार में आपकी सेवा की कला तो मुझमें बिल्कुल भी नहीं है। भला सखियों के बिना बिहार कैसा? इसलिए सखियों का आना उतना ही आवश्यक है जितना कि आपका।

हमने सुना है कि नित्य बिहार केवल वृन्दावन की कुंजों में ही सम्भव है। कुरुक्षेत्र में आपने राधा रानी और उनकी सखियों से मिलकर कहा था – 'हे राधे! आप भी वही हैं, मैं भी वही हूँ। ये सखियाँ भी वही हैं। फिर कुरुक्षेत्र में इस महामिलन का वो सुख नहीं मिला जो वृन्दावन में था।' इस पर श्रीराधा रानी ने कहा – 'हे प्यारे! आप भी वही हैं, मैं भी वही हूँ, मेरी सखियाँ भी वही हैं। लेकिन यहाँ वो वृन्दावन तो नहीं है, यहाँ तो कुरुक्षेत्र है।

इसलिए, हे कन्हैया! मेरी अंतिम प्रार्थना है, जब आप राधा रानी व सखियों सहित आओ तो अपना वृन्दावन जरूर साथ लाना। हमने सुना है जब आप अपने रसिक भक्तों को दर्शन देते हैं तो आपका धाम भी साथ ही प्रकट होता है। अत: वृन्दावन की कुंजों को भी साथ लाना न भूलें। तभी तो मैं आपको पूर्ण रूप से सुखी देख सकूँगी। बस! मैं आपको सुखी देखूँ, ये मेरी प्रार्थना है।

ये सच है कि मैं रसिक नहीं हूँ। मैं आपके योग्य नहीं हूँ। लेकिन संतों के कहने पर बार – बार प्रार्थना करने का तो हमारा अधिकार है। सुनना न सुनना आपका काम है। यदि सुनोगे तो अच्छी बात है नहीं तो हमको हमारे हाल पर ही छोड़ दीजिए। अनादि काल से भी तो हम आपके बिना रह ही रहे हैं। अनादि काल से आपके बिना रहते – रहते आदत तो पड़ ही गई है। अनादि काल से दु:खों के थपेड़े खाकर रोते – रोते अब तक भी तो दिन काट ही लिए हैं। आगे भी इसी प्रकार रोते – रोते दिन काट ही लेंगे। यदि आपको आने में खुशी होती है, तब ही आना। मेरी परवाह बिल्कुल भी नहीं करना। आपके सुख के आगे मेरे दु:ख की अहमीयत ही क्या है? इसलिए मेरे लिए अपना सुख न छोड़ना। आप जहाँ भी रहो, सुखी रहो। बस, यही मेरे हृदय की .................।

बस, अंत में इतना ही कहूँगी कि हमारी बात सुनो, चाहे ना सुनो हमें बस पुकारने दीजिए, कुछ सुनाने दीजिए।

# कृष्ण कृपा कूँ करहुँ प्रणाम

हे नाथ! हे अकारण करुणावरुणालय! मैं आपकी सीमातीत अहैतुकी कृपा का कहाँ तक गुणगान करूँ? भला अपार का भी कोई पार पा सकता है? आपकी कृपा मुझ पर ही नहीं बल्कि समस्त जीवों पर समान रूप से अहर्निश बरस रही है। दुराचारी–सदाचारी, पापी–धर्मात्मा, भोगी–त्यागी, राजा–रंक किसी को भी आपने अपनी अहैतुकी कृपा से तनिक भी वंचित नहीं किया। परंतु यह अभागे दुर्मति जीव आपकी इस दयालुता का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। सदा अपने आपको अभावों से ग्रस्त व त्रस्त मानकर दिन–रात क्रन्दन कर रहे हैं। बार–बार आपसे कृपा की भीख माँग रहे हैं। इन अनभिज्ञों को ऐसा लग रहा है कि आप इनसे अप्रसन्न हैं जबकि आप कभी भी किसी से अप्रसन्न होते ही नहीं। सभी पर एक समान कृपा वर्षण करते रहते हैं। यह जीव अज्ञानवश ही दुःखी रहता है। अपने कर्मों व स्वभाव से ही दुःखी रहता है। आपकी कृपा का अवलोकन नहीं कर पाता। यदि यह जीव अपने कर्मों व स्वभाव को सुधार ले तो इसको पग–पग पर आपकी कृपा का अनुभव होने लगेगा।

हे कृपानिधान! हे करुणा के सागर! हे दया की मूरति! मैं आपसे इन लोगों की तरह कृपा की याचना नहीं कर रहा हूँ क्योंकि आपने पहले ही बिन माँगे अनन्तानन्त कृपा की हुई है। मैं तो यह चाहता हूँ कि जो कृपा आपने मुझ पर की है बस उसी को देख–देखकर आनन्द मग्न होता रहूँ। कभी भी आपकी कृपा को भूलूँ नहीं। बार–बार कृपा अवलोकन कर भावविभोर होता रहूँ। मुझे हर व्यक्ति, वस्तु व परिस्थिति में आपकी अहैतुकी कृपा का ही दर्शन होता रहे। मैंने तो अपने आपको आपकी कृपा पर छोड़ दिया है। आपको मेरे लिये जैसा ठीक जँचे वही करो। आप पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र हैं। आपकी चाह पूर्ण हो। आपने मेरे लिये जो विधान निश्चित किया है, मेरी बिना परवाह किये वैसा ही करो क्योंकि आपकी कृपा ने मुझे अच्छी प्रकार से समझा दिया है कि आपका प्रत्येक विधान मंगलमय ही होता है चाहे देखने में वह अज्ञानवश महाभयंकर ही क्यों न दिखाई दे।

हे मेरे परम सुहृद! सर्वसमर्थ! अन्तर्यामी स्वामी! मैं आपसे कुछ

भी न चाहूँ। जो आप चाहते हैं बस मैं वहीं चाहूँ। आपकी चाहत ही मेरी चाहत हो। आपकी मंगलमयी इच्छा के विरूद्ध यदि कोई इच्छा मेरे मन में जगे तो आप भूलकर भी उसको पूर्ण न करें। बस, मेरे जीवन में वही हो जो आप चाहें।

**चाह मिले तेरी चाहत में, जैसे सागर में नदिया।**
**उठे तरंगें तेरी चाह की, मेरे मन में सांवरिया।**
**मन दर्पण में प्रतिबिंबित हो, तेरे मन की चाह पिया।**
**बाहर से तो मैं तू दो हों, भीतर से हो एक जिया।**
**सो स्वर दोगे सोई बोलूँ, जैसे बाजे बाँसुरिया।**
**भक्तों का अनुगमन करूँ मैं, ज्यौं तालों पे पायलिया।**
**मेरा सोचा कभी न होवे, सो होये जो तेरा किया।**
**मेरे पास कभी कुछ ना हो, सो होये जो तेरा दिया।**
**सूत्रधार हरि तुम हो मेरे, नाचूं बन कठपूतलिया।**
**करुण दास जीवन नैया का, एक तुम्ही हो खेवटिया।**

हे जगन्नियन्ता! आपकी इच्छा व विधान से या मेरे कर्मों के अनुसार जो भी निन्दा, अपमान, रोग, दरिद्रता, सुखों का सर्वथा अभाव व विपत्तियाँ आदि अनेकों दुःख मेरे जीवन में आयें, मैं उनमें केवल आपकी मंगलमयी कृपा का ही हाथ देखूँ। प्रत्येक परिस्थिति को कृपा का ही मूर्तिमान रूप देखूँ। मैं अपने अन्दर-बाहर यत्र-तत्र-सर्वत्र केवल आपकी कृपा का ही विस्तार देखूँ। बस यही कृपा चाहता हूँ।

हे मेरे मंगलमय नाथ! बचपन से आज तक जो भी कुछ मेरे जीवन में घटित हुआ वह सब आपकी कृपा का ही तो विस्तार है। आपकी साधारण अहैतुकी कृपा तो चर-अचर सभी जीवों पर बरस ही रही है। लेकिन हे मेरे कृपालु देव! आपने तो मुझ अधम पर विशेष कृपा भी की है। मैं आपके इस कृपालु स्वभाव की कहाँ तक महिमा गाऊँ, मैं तो अपने आपको आपकी इस विशेष कृपा के योग्य भी नहीं समझता। पूर्वजन्म की तो मैं नही ंजानता, इसी जन्म में मुझसे अनेकों गलतियाँ हुई, अनेकों के

अपराध हुए। यह जीवन अवगुणों व अपराधों से भरा पड़ा है। जब स्वयं को देखता हूँ तो स्वयं ही स्वयं से शरमिंदा हो जाता हूँ। लेकिन आप मेरे अपराध व अवगुणों को न देखकर कृपा किये जा रहे हैं। जिस प्रकार मैं अपने बुरे स्वभाव से लाचार हूँ शायद आप भी इसी प्रकार अपने कृपालु स्वभाव से लाचार हैं। आप जैसे कृपालु स्वामी को छोड़कर यह पामर जीव यदि कहीं ओर मन लगाता है तो इसको मैं अभागा, दुर्बुद्धि न कहूँ तो ओर क्या कहूँ?

हे कृपासिन्धु! क्या आप बतायेंगे कि आपने अवगुणों से भरे इस पामर पर क्यों विशेष कृपा की? आपने मुझमें क्या देखा, कौन सा सद्‌गुण व कौन सी बात जिसको देखकर आपने अपनी विशेष कृपा बरसा दी जो आज तक रुकने का नाम ही नहीं ले रही है। यदि मुझे उस बात का पता चल जाए जो आपको कृपा करने पर लाचार कर देती है तो अवश्य ही मैं उस बात पर अपने आपको दृढ़ रखने की कोशिश कर पाऊँगा। साथ ही सारी दुनिया को भी बता दूँगा कि जिससे सभी कृपानुभूति कर कृतार्थ हो जायें। मैं आपसे यह बात इसलिये जानना चाहता हूँ कि मुझको ऐसा एक भी गुण स्वयं में नहीं दिखता कि जो आपको रिझाने का कारण बने। अवगुणों व अपराधों से भरे एक कीट पर आपका रीझना सचमुच मुझे आश्चर्य में डाल रहा है।

अन्त में जब मैं इस निश्चय पर पहुँचता हूँ कि यह आपकी अहैतुकी कृपा का ही परिणाम है तो एक प्रश्न फिर खड़ा हो जाता है कि फिर यह विशेष कृपा सभी पर क्यों नही? इसका समाधान तो प्रभु आप ही कर सकते हैं।

बचपन से आज तक का जीवन जब देखता हूँ तो आपकी विशेष कृपा का ही दिग्दर्शन होता है। बचपन में इतर धर्मावलम्भियों का संग करके भी आपकी लग्न लगी रही जबकि उनका संग मेरे लिये कुसंग ही था। आपके प्रेम व विवेक ने संसार के बंधनों से छुड़ाकर भक्ति की भूमि वृन्दावन में बुलाया। तीन साल वृन्दावन का वास कराके फिर नौ वर्ष श्रीराधारानी के धाम बरसाने, फिर तीन वर्षों के लिये यमुनानगर भेजकर हरि नाम कीर्तन का प्रचार करवाया। फिर बारह वर्षों से गोवर्धन में बसाया

और अब 'सेवा सुख' मासिक पत्रिका के द्वारा भक्तों की सेवा व मानसिक अष्टयाम सेवा द्वारा अपनी सेवा ले रहे हैं। क्या यह साधारण कृपा है? नहीं, यह विशेष कृपा का ही परिणाम है।

**कृष्ण कृपा कूँ करहुँ प्रणाम।**
**टेढ़े मेढ़े पथ सों आकर, जाने लीन्हों थाम।।**
**पहले ममता बंध छुड़ाये, छुड़वायो घर गाँम।**
**संत संग दे कथा सुनाई, जपवायो हरि नाम।।**
**निज जन सों प्रेरित करि मोसों करवायो निज काम।**
**घर–घर भेजि–भेजि चलवायो,संकीर्तन अठयाम।।**
**पावन नाम प्रचार करायो, अंत बसायो धाम।**
**हृदय बनायो श्रीवृन्दावन, बिहरैं श्यामा श्याम।।**
**कहा होयगो मैं नहिं जानूँ, आगे जाने राम।**
**करुण दास निश्चिंत बिठायो, पायो मन विश्राम।।**

अनन्त सृष्टियों में अनन्तानन्त आत्माएँ हैं। उनकी कोई गणना नहीं कर सकता। शायद ही कोई सम्पूर्ण पृथ्वी के धूल कणों को गिन ले, सागर की बूँदों को गिन ले, आकाश के तारों को गिन ले परंतु कोई आत्माओं को नहीं गिन सकता। उन अनन्तानन्त आत्माओं में से केवल सात अरब से कुछ अधिक जीवात्माओं को ही मानव का शरीर मिला है अर्थात् पूरी पृथ्वी के धूल कणों में से केवल एक बाल्टी धूल कण। उन सात अरब के लगभग मानवों में हम आ गये। क्या यह विशेष कृपा नहीं हुई? फिर उन सात अरब लोगों में भी केवल सवा सौ करोड़ लोगों को ही अध्यात्मिक वातावरण वाला धर्मप्रधान देश भारत में जन्म मिला, यह मेरे लिये क्या कम सौभाग्य की बात है। उन सवा सौ करोड़ लोगों में भी आधे ही ऐसे हैं जो धार्मिक होते हैं। फिर उनमें भी आधे ही ऐसे हैं जो सनातन धर्म को मानते हैं। उन सनातन धर्म को मानने वालों में भी कुछ गिने चुने ही ऐसे हैं जो भगवान् की भक्ति करते हैं। फिर उन भक्तों में भी बहुत कम ऐसे हैं जो गुरु शरणागत हुए। फिर उन गुरुमुखों में भी ऐसे बिरले ही

होते हैं जो गुरु की शरणागत होकर जप – चिंतन करते हैं। जप – चिंतन करने वालों में भी बहुत ढूँढ़ने पर बिरले ही ऐसे मिलेंगे जिन्होंने भगवद् प्रेम प्राप्ति के लिये कमर कस ली है। जो भगवद् प्रेम प्राप्ति के लिये कुछ भी करने व त्यागने के लिये तैयार बैठे हैं। यदि हम इतनी सीढ़ियाँ पार करते हुए यहाँ तक पहुँच गये हैं तो हे मेरे नाथ! मैं इसको आपकी विशेष कृपा न कहूँ तो ओर क्या कहूँ?

हे संसार के समस्त बंधन छुड़ाके अपने श्रीधाम में बसाने वाले ममता के सागर! बस, अब तो डूबने दे इस प्रेम सिंधु में। खेलने दे अपने प्रेम सिन्धु की लहरों के साथ। आपके प्रेम में भूल जाऊँ सदा के लिये सुख – दुःखादि द्वन्दों से भरे इस संसार को।

**सुख चाहे सब छीन लो, दे दो दुःख अपार ।**
**ब्रज चौरासी कोस से, भेज न ऐकहूँ बार ।।**

X X X

**नाथ अहैतुकि कृपा तिहारी ।**
**पतितन को सिरमौर बनायो, आज कृपा अधिकारी ।।**
**सुर दुर्लभ नर देही दीन्ही, दीन्ह संत हितकारी।**
**नित्य कथा सत्संग दे पुनि पुनि बिगड़ी बात सुधारी ।।**
**ज्ञानी उद्धव विधि शिव समरथ,जेहि हित भये भिखारी।**
**सो ब्रज वास दियो करुणामय, करुणा पे बलिहारी ।।**
**एसी एक कृपा अब कर दो, हे दीनन हितकारी।**
**करुण दास मन कुंज निरंतर, बिहरैं युगल बिहारी ।।**

# सेवा – सुख

'भक्ति' शब्द की उत्पत्ति 'भज सेवायाम्'धातु से हुई है। इसलिये भक्ति का अर्थ है – 'सेवा'। यद्यपि भक्ति शब्द का अर्थ सेवा है, फिर भी नौकर के द्वारा की गई अपने मालिक की 'सेवा' भक्ति नहीं है; क्योंकि वह तो धन प्राप्ति के उद्देश्य से की गई है। जबतक उसे वेतन दिया जाता है, तब तक वह सेवा करता रहेगा, और यदि उसे वेतन न दिया जाये तो वह सेवा नहीं करेगा। अतः फल की अपेक्षा न रखकर जो सेवा की जाती है, वही वास्तविक सेवा मानी जाती है। इसी सेवा को 'भक्ति' कहते हैं। माता के द्वारा अपने बच्चे के प्रति की गई सेवा भी निरपेक्ष सेवा ही है। यदि कोई माता को कहे कि – 'आपका यह बच्चा दुष्ट होगा! आपके लिये दुःखप्रद होगा! ऐसा उसकी कुण्डली में योग है', तो भी माता अपने बच्चे की सेवा नहीं छोड़ती। परिणाम सोचे बिना, बिना फल की इच्छा रखे, प्रेम – परवश जो सेवा होती है, वही वास्तव में सेवा है। सेवा से सुख मिलेगा, ऐसा प्रेमी में भाव नहीं होता क्योंकि उसके लिये सेवा से सुख नहीं, सेवा ही सुख है। सेवा ही सुख है, ऐसा अनुभव केवल प्रेमी को ही हो सकता है, किसी अन्य को नहीं।

वृन्दावनकी गोपियों द्वारा श्रीकृष्ण की सेवा भी इसी प्रकार की है। इसलिये भक्त शिरोमणि श्रीनारद जी ने अपने 'भक्ति सूत्र'(२) में 'परम – प्रेम – रूपा' कहकर भक्ति का वर्णन किया है। उन्होंने अपने कथन के स्पष्टीकरण के लिये ब्रज गोपियों का उदाहरण दिया है(यथा ब्रज गोपिकानाम् – २१)। श्रीमद्भागवत में सेवा के बदले कुछ चाहने वाले को वणिक अर्थात् व्यापारी(न स भृत्यो स वणिक्) कहा गया है। गोपियों केअतिरिक्त ऐसे और भी कितने भक्तहो चुके हैं, जिन्होंने भगवान् की सेवा के बदले कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा नहीं की, अपितु स्वभावतः सेवा करते रहे। सेवा के बिना वो रह नहीं सकते थे। क्योंकि वह वास्तव में प्रभुके सेवक, दास व प्रेमी थे। वो सेवा के वास्तविक अर्थ अर्थात सुख को अनुभव कर चुके थे।

सेवा – सुख प्रेम से, प्रेम कृपा से व कृपा दीनता से प्राप्त होती है।

सेवा–सुख, प्राप्ति का साधन ही नहीं है, बल्कि साध्य भी है। श्रद्धालु के लिये सेवा, साधन है और प्रेमी के लिये सेवा, साध्य है। जो सेवा, सुख का साधन है वही सेवा, सुख भी है, लेकिन केवल प्रेमी के लिये।

सेवा हम माता–पिता, दीन–दुःखी, अभाव ग्रस्त व देश समाज किसी की भी करें, सेवा सुख है। सेवा का फल भी सुख है।

**आज नहीं तो कल, सेवा का सुख फल।**

वृन्दावन की सखियाँ अपने प्रिया–प्रियतम की सेवा का सुख लेती है। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण भी नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा रानी की सेवा का सुख लेते नहींअघाते। श्रीराधा रानी भी अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की सेवा का सुख लेती हैं–

**सेवा कुञ्ज में राधिका, चरण पलोटे श्याम ।**
**कुञ्ज झरोखन सहचरी, करती दर्श ललाम ।।**

**अष्ट सखिन पै हौं बलिहारी ।**
**जिनके मन मंदिर में विहरैं, युगल रसिक वृन्दावन चारी।।**
**सदा प्रेम रस रंग पगी सब, बिलसन सेवा सुख आहारी।**
**सुधिबुधि भूलि मगन रस डोलैं, रुनुक झुनुक रव आनँदकारी।।**
**देवी रंग सुदेवी ललिता, सखी विशाखा चम्पक प्यारी।**
**करुण दास चित्रा तुँगविद्या, इंदुलेखा शरण तिहारी।।**

# एक प्रेमी भक्ता को लिखा पूज्य श्री का पत्र

दिनांक – 26 – 10 – 2013

...... जी,

राधे राधे !

आपके पत्र के पहले दो प्रश्नों को मैं कोई दैवी संकेत न मानकर साधारण बात ही समझ रहा हूँ। यदि इसमें कोई दैवी संकेत भी है तो मैं यही कह सकता हूँ कि यह अच्छी बात हुई।

बरसाने में मटकी फूटन लीला जो साँकरीखोर में प्रतिवर्ष त्रयोदशी के दिन होती है, यह परम्परा बहुत प्राचीन है। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के सिद्ध महापुरुष श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी के सिद्ध द्वादश शिष्यों में से एक शिष्य श्रीघमण्डीदेवाचार्य जी द्वारा चलाई हुई परम्परा है। श्रीरासबिहारी स्वरूप ठाकुर जी व श्रीजी (राधा रानी) में स्वयं श्रीठाकुर जी व श्रीजी का आवेश आता है। यह आवेश मुकुट धारण करने से मुकुट बढ़ाने तक भी हो सकता है या बीच में कभी थोड़े समय के लिये भी हो सकता है। यह बात मैं अपने अनुभव के आधार पर भी कह रहा हूँ। इस सम्बन्ध में 'सेवा सुख' पत्रिका में भी एक लेख छपा था। शायद आपने पढ़ा भी होगा।

श्रीठाकुर जी का स्पर्श होना व उसी समय हाथ से पैसे छूटना। मन्दिर में किसी अनजान व्यक्ति के द्वारा माला मिलना व उसके द्वारा मैं नन्दगाँव से आया हूँ यह कहना। इन सब बातों का अर्थ तो ठाकुर जी ही जानते हैं या वो जिसको जनाना चाहेंगे वह जान सकता है।

तीसरे प्रश्न के रूप में आपने लिखा कि श्रीजी व श्रीठाकुर जी का प्रेम विशुद्ध है परन्तु देखने में तो वह साधारण स्त्री – पुरुष जैसा ही दिखाई देता है। क्या दोनों के प्रेम में शारीरिक मिलन भी होता है जैसे साधारण स्त्री – पुरुष का?

देखिये, ये प्रेम उस प्रेम राज्य में प्रवेश किये बिना समझा नहीं जा सकता। इस तत्त्व को तो कृपा ही ठीक – ठीक समझा सकती है। यह अचिन्त्य विषय है। प्राकृत मन, बुद्धि का इसमें प्रवेश नहीं है। भक्ति सूत्र में श्रीनारद जी ने इसको 'अनिर्वचनीय' कहा है। इसका वर्णन नहीं हो सकता, यह 'मूक स्वादवत' है। केवल अनुभव गम्य है।

श्रीराधा माधव का प्रेम साधारण स्त्री – पुरुष जैसा दिखने पर भी वहाँ काम – वासना की लेश मात्र भी गन्ध नहीं होती। प्रेम हृदय की वस्तु है। यह प्रेम जब प्रकट में किया जाता है तो इसी प्रेम क्रिया को रति कहते हैं। यहाँ पर रति का अर्थ सांसारिक काम क्रीड़ा न समझना। यहाँ रति का अर्थ है – क्रिया द्वारा प्रेम दान। यह रति अनन्त प्रकार की होती है।

हम लोग सांसारिक जीव हैं। हम लोगों ने अनादि काल से काम वासना का ही सेवन किया है। प्रायः हर योनि में भोगे काम के संस्कार हमारे मन में इस प्रकार जम गये कि श्रीराधा माधव की परम पवित्र प्रेम क्रीड़ा भी रति काम वासना ही दिखाई देती है। हम लोग तो सोच भी नहीं सकते कि बिना काम – वासना के भी रति हो सकती है।

श्रीराधा माधव दोनों प्रेम रूप हैं। अनादि काल से इनकी प्रेम लीला चल रही है और अनन्त काल तक चलती रहेगी। एक पल के लिये भी बीच में विराम नहीं होता। इसलिये इनकी प्रेम रति को नित्य विहार कहा गया है।

**चन्द्र टरे दिनकर टरे, टरे त्रिभुवन विस्तार,**
**दृढ़वत श्रीहरिवंश को,मिटे न नित्य विहार ।**

काम वासना सुख क्षणिक है, अन्त वाला है। परिणाम में दुःख रूप है। श्रीराधा माधव की लीला में इसकी छाया भी प्रवेश नहीं कर सकती।

**प्रेम भास तम काम रति, द्वै दिसि गति विपरीत ।**
**वृन्दावन की सींव में, दोउन की इक रीत ।।**
**काम वासना सबल अति, बाँध्यो सब संसार ।**
**यह तनिक नहिं जाय सकै, कुंजमहल के द्वार ।।**
**प्रेम काम दोउ एक हैं, श्री वृन्दावन धाम ।**
**रस की द्वैत तरंग हैं, भिन्न रूप अरु नाम ।।**
**रूप छबि लखि लखि बढ़ै, ओर लखनि की चाह ।**
**ताहि प्रेम पहिचानिये, लखि लखि नव उत्साह ।।**
**छबि लखि मन धीरज तजै, परसन कूँ अकुलाय ।**

**युग सम त्रुटि लागति जबै, सोई काम कहाय ।।**
**प्रेम काम वशिभूत है, रस विलास जब होइ ।**
**आलिंगन चुंबन सरस, रसिक कहत रति सोइ ।।**
**सरस परस जब होत है, निरखन तरसें नैन ।**
**छवि दर्शन जब होत है, परसन कूँ बेचैन ।।**
**बिना दरस अरु परस के, इकपल रह्यौ न जाय ।**
**प्रेम काम के बीच में, मन हिंडोले खाय ।।**
**हर पल विरहा होत है, हर पल होत विहार ।**
**पीवत रस आतुर अति, तनमन सुधि न सँभार ।।**
**युगल हिय में बसत नित, प्रेम काम इक संग ।**
**पूरक दोऊ परस्पर, छिन छिन बाढ़त रंग ।।**
**यासों नित्य बिहार में, नित्य नयो उत्साह ।**
**करुणदास रससिन्धु की, नहीं कहीं पे थाह ।।**

आपका चौथा प्रश्न है कि श्रीराधाकृष्ण परस्पर प्रेम करते हैं सखियाँ दोनों को लाड़ लड़ाती हैं। क्या दम्पत्ति सुख को सखियाँ भी भोगती हैं?

निकुंज लीला में श्रीराधामाधव व सखियाँ लीला दृष्टि से तीन दिखने पर भी तत्त्व दृष्टि से एक ही हैं। सखियों को श्रीराधा की कायव्यूह रूपा कहा है अर्थात् सखियाँ श्रीराधा की अंग स्वरूपा हैं। जिस प्रकार मन में मिठाई खाने की इच्छा हुई, मन तो मिठाई खायेगा नहीं, खायेगी तो जिह्वा ही लेकिन संतुष्टि मन को होती है। निकुंज लीला की भी प्रणाली (System) कुछ इसी प्रकार की है। कृष्ण हैं मिठाई तो राधा जिह्वा। सखियाँ मन की इच्छा स्वरूपा हैं। श्रीमहावाणी जी में श्रीनिम्बार्क पीठाधीश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी लिखते हैं–

**प्रिया शक्ति अह्लादिनी,पिय आनन्द स्वरूप ।**
**तन वृन्दावन जगमगें, इच्छा सखी अनूप ।।**

निकुंज लीला में तन सबके अलग–अलग होने पर भी मन

सबका एक है। वहाँ एक मन होने से सबको बराबर सुख मिलता है। जिस प्रकार मुख द्वारा भोजन करने पर पूरा शरीर उनके प्रत्येक अवयव पुष्ट होते हैं। सब अंग-प्रत्यंगों को बराबर पुष्टी मिलती है। उसी प्रकार श्रीराधा माधव के परस्पर प्रेम से सखियों की भी साथ-साथ तुष्टि व पुष्टि होती है।

जो कार्य प्रणाली हमारे शरीर में है वही निकुंज में भी है। हाथ दिन -रात कमाते हैं, भोजन का स्वाद जीभ ले जाती है। फिर भी हाथ यह नहीं विचार करते कि कमाया हमने और स्वाद जीभ ले रही है। हम क्यों अपनी कमाई इसको खिलाएँ? हाथ इसलिये ऐसा नहीं सोच पाते क्योंकि हाथ और जीभ दोनों के पास एक ही मन और बुद्धि है, अलग-अलग नहीं। एक ही मन होने से दोनों की अलग-अलग सत्ता होने पर भी वास्तव में दोनों एक ही हैं।

शरीर के विभिन्न अंगों की तरह निकुंज में सबकी अलग-अलग सत्ता होने पर भी प्रेम ने सबके मनों को इस प्रकार ऐकमऐक कर रखा है कि सबको सुख की एक ही जैसी अनुभूति होती है, कम या अधिक नहीं। जिस प्रकार हमारे शरीर के विभिन्न अंगों में कभी परस्पर डाह नहीं होता और न ही कभी परस्पर विरोध होता है। इसी प्रकार सखियों का श्रीराधा से कभी डाह नहीं होता और न ही कभी किसी अन्य से विरोध। वहाँ एक का सुख सबका सुख होता है, एक की इच्छा सबकी इच्छा होती है। खांड का बना खिलौना (गुड़िया) उसके हाथ, पाँव अलग-अलग होने पर भी सबमें मीठा एक समान होता है। इस प्रकार श्रीराधा, कृष्ण व सखियाँ सब अलग-अलग होने पर भी सबमें एक ही समान सुखानुभूति होती है।

**जो श्यामा सो श्याम हैं, सोइ सखी अरु धाम।**
**रस के रूप अनेक हैं, विलसत आठों याम॥**
**चतुर नाम तत एक है, युगल सहचरी धाम।**
**रस रस क्रीड़त परस्पर, करत रसिक रसपान॥**
**जल जलधी जल ही लहर, जल ही जलद फुहार।**
**एकै रस क्रीड़ा करत, धरि धरि रूप हजार॥**

**चार रूप सों एक रस, क्रीडत आठों याम।**
**युगल सहचरी कुञ्जवन, भिन्न भिन्न धरि नाम।।**
**निज ही निज को निरखते,निज ही निज से मान।**
**निज ही निज रस पान करि, होत रहत बेभान।।**
**लीला गत ही भेद है, मूल तत्त्व रस ऐक।**
**जे कोई चहँ पावनो, रसिक चरन सिर टेक।।**
**नहिं गृहिणी नहिं प्रेमिका, नहिं राधा परनार।**
**दिन दुलहनियाँ श्याम की, दोउ वितन रस सार।।**
**नहीं कान्त प्रियतम नहीं, कृष्ण पुरुष नहिं जार।**
**दिन दुलहा श्रीराधिका, जोरि अनादि उदार।।**
**डर पुनरोक्ति को नहीं, बोलत सोच विचार।**
**करुण दास समझावनो, चाहत बारंबार।।**

भले ही मैंने अपनी तरफ से समझा दिया फिर भी ठीक – ठीक तो हम इन बातों को तभी समझ सकते हैं जब हम स्वयं सखी भाव से भावित होकर इस प्रेम रस को चखेंगे।

अब आगे कुछ नहीं पूछना क्योंकि मैं इस समय नियम में हूँ, कुछ लिखने की स्थिति में नहीं हूँ। लिखना तो बहुत विस्तार से चाहता था। समय की अल्पता के कारण कम लिख पाया। शायद आपके प्रश्नों का उत्तर कुछ अंश में आपको इस लेख में मिल जायेगा। इस आशा के साथ पत्र समाप्त करता हूँ और आपके मंगल की कामना करता हूँ।

शेष भगवत्कृपा,

राधे राधे!

# अद्भुत संत श्री सरकार जू का निकुंज प्रवेश

प्रत्येक नदी गंगा नहीं होती, प्रत्येक शिला सालिग्राम नहीं होती, प्रत्येक ऋतु बसंत नहीं होती, प्रत्येक पर्वत गिरिराज नहीं होता, प्रत्येक ग्रंथ गीता नहीं होता, ठीक इसी प्रकार प्रत्येक संतवेषधारी संत नहीं होता। संत बिरले होते हैं। हमारे चरितनायक पूज्य श्री सरकार जू महासुदुर्लभ संतों में से एक थे।

संत को जानना व पहचानना केवल उनकी कृपा पर ही पूर्णरूपेण निर्भर है। जब तक ये छिपना चाहेंगे तब तक कोई भी किसी प्रकार इनको जान व पहचान नहीं सकता। संत जब जितना स्वयं को जनाना चाहेंगे जीव तब ही और उतना ही इनको जान सकता है।

संत न तो जाति की सीमा में बंधे होते हैं और न ही किसी बाह्य वेशभूषा में। ये किसी भी जाति में व किसी भी वेशभूषा में हो सकते हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ आदि चारों आश्रमों में किसी भी आश्रम में हो सकते हैं। बाह्य आचरण व्यवहार से संतों की वास्तविक पहचान असंभव है। कुछ संत शिष्टाचार का पालन करने वाले होते हैं तो कुछ संत शिष्टाचार से रहित भी दिखाई दे सकते हैं। भ्रष्ट न होने पर भी भ्रष्ट जैसे दिखाई दे सकते हैं। कुछ तो भूत–पिशाचवत मैले–कुचैले तन वसन वाले भी हो सकते हैं। संत प्रसिद्ध भी हो सकते हैं और नहीं भी। कई संत आत्मसंगोपन का भाव लिये समाज में प्रत्यक्ष होकर भी अपने रहस्यों को अपने में ही समेटे होते हैं। समाज के बीच सबको सुलभ होकर भी सबसे छिपे हो सकते हैं। कोई बिरला कृपा प्राप्त जीव ही इनको पहचान सकता है।

**क्वचित शिष्टा क्वचित भ्रष्टा क्वचित भूत पिशाचवत ।**
**नाना रूप धरो योगी विचरन्ती मही तले ।।**

पूज्य श्री सरकार जू एक ऐसे संत थे जो संत भेष में न होकर

साधारण गृहस्थ भेष में रहकर भी विरक्त संत शिरोमणियों के भी सिरमौर थे। जिनमें श्री हरिनाम निष्ठा कूट – कूटकर भरी थी। नाम जप संकीर्तन निष्ठा के प्रभाव से अध्यात्म जगत की ऊँची से ऊँची स्थिति को प्राप्त हो गये थे। आम व्यक्ति उनकी स्थिति की कल्पना भी नहीं कर सकता।

ऊँची स्थिति पर पहुँचे किसी साधक ने उनमें साक्षात् श्रीकृष्ण को देखा तो किसी ने श्रीराधा रानी को। कोई साधक श्रीराधारानी की प्रिया सखी स्वर्ण मंजरी के रूप में उनको देखता तो कोई अद्भुत महापुरुष के रूप में। कोई उनको अवतारी महापुरुष तो कोई कारक पुरुष के रूप में उनकी कल्पना करता। कई संतों ने उनको सचल वृन्दावन कहा तो कई साधक उनको श्रीहरिनाम अवतार मानते। उनका वास्तविक स्वरूप क्या था इसको तो वे स्वयं ही जानते हैं। भला दूसरा कोई क्या जान सकता है। संतों का अंतरंग जीवन क्या है? कैसा है? इस बात को उनके पास रहने वाले भी नहीं जान सकते। हाँ, मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि वो जो भी थे अद्भुत थे, निराले थे, अद्वितीय थे। उनके समान बस वे ही थे। भाव साधना के जिस उच्चतम स्तर पर वे आरूढ़ थे उसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता।

उनके भीतर प्रत्येक क्षण रस का महासागर हिलोरें लेता रहता था। वो रस सागर में डूबकर रसमय हो चुके थे। श्रीप्रिया प्रियतम की निकुंज लीला में सदा खोये रहते थे। उनकी मुस्कान व नेत्रों में अद्भुत आकर्षण था। उनकी मस्ती तो बस देखते ही बनती थी। प्रिया प्रियतम श्रीराधामाधव की निभृत निकुंज लीलाओं का गायन, श्रवण व चिंतन उनके जीवन का अभिन्न अंग बन चुका था। वो प्रेम ही सुनते और प्रेम ही देखते थे। निकुंज रस माधुरी का पान जब वो पदों के माध्यम से करते तो उस समय की उनकी मस्ती, भाव भंगिमा, उनका मस्ती भरा नृत्य व नेत्रों में प्रेम की खुमारी तो बस देखते ही बनती थी। जो भी उनको मिला बस सदा के लिये उन्हीं का हो गया। भगवान् के प्रिय भक्तों के जो भी लक्षण, गुण शास्त्रों में वर्णन हुए हैं वो सब उनमें कूट – कूटकर भरे थे। वो भक्ति के साकार विग्रह थे। समस्त सद्गुणों की प्रतिमूर्ति थे। भगवद् इच्छा के पूर्ण रूपेण अनुगामी थे। तितिक्षा व वैराग्य के स्वरूप थे। वे क्या

नहीं थे?

वे सबके बीच में रहकर भी सबसे अलग थे। सहज दिखने पर भी असहज थे। साधारण सा दिखने पर भी असाधारण थे। सबसे व्यवहार करते रहने पर भी उनकी मनोवृत्तियाँ अन्तर्मुखी रहा करती थीं। इन्द्रियों द्वारा बाह्य जगत् का व्यवहार करते रहने के साथ-साथ ठीक उसी समय अन्तर्जगत् में भी डूबे रहते थे।

इस समय रह-रहकर अनेक अनुभूतियों का स्मरण हो रहा है। उनके साथ बिताये अनमोल पल मानस पटल पर उभर रहे हैं। चाहकर भी मैं उन सब घटनाओं को नहीं बता पा रहा हूँ जो मेरी स्वयं की अनुभूतियाँ हैं क्योंकि उन घटनाओं में उनकी अलौकिकता व सामर्थ्य का तो दर्शन होगा ही जो मैं आप सबको कराना चाहता हूँ साथ ही आत्मप्रशंसा भी होगी ही। मेरा अहंकार भी आप सब लोगों को दिखाई देगा ही। इसलिये मैं नहीं लिख पा रहा हूँ। यदि मैं उन सब अनुभूतियों को कहूँ तो आप मुझे आत्मप्रशंसक, अभिमानी कहेंगे। मेरे कहे पर पूर्ण विश्वास नहीं कर पायेंगे। इससे लाभ की जगह हानि की ही अधिक होने की संभावना बनेगी। फिर भी उदाहरण के लिये मैं एक अनुभूत घटना तो बता ही देता हूँ। इस घटना से आप श्रीसरकार जू के स्वभाव व समर्थ का कुछ तो आंकलन कर ही लेंगे।

## पूज्य श्रीसरकार जू से प्रथम भेंट

परम आदरणीय संत श्रीराधामोहनदास जी, श्रीहरिबोल बाबा, श्रीभक्तिपाद बाबा, भक्तमाली श्रीराजेन्द्रदास जी (बरसाने वाले) एवं नन्दगाँव के श्री भण्डारी बाबा जब भी मेरे पास बरसाने श्रीनिकेतन आश्रम में आते तो उनके मुख से श्रीसरकार जू की महिमा सुनता। उन दिनों मैं बरसाना रहा करता था। ये सब संत जब भी मेरे पास आते तो केवल श्रीसरकार जू की ही चर्चा करते। बार-बार श्रीसरकार जू की महिमा सुनकर मन में विशेष श्रद्धा हुई, दर्शन को मन मचलने लगा। फिर भी न जाने क्यों दर्शन के लिये दरभंगा (बिहार) जा न सका। जब-जब ये संत श्रीसरकार जू के पास जाते तो इनको श्रीसरकार जू के लिये दण्डवत प्रणाम निवेदन करता। साथ ही कुछ संदेश भी भेजता। ये सिलसिला शायद डेढ़-

दो वर्ष चला। ठीक से स्मरण नहीं रहा।

एक बार परम आदरणीय संत श्रीराधामोहनदास जी एवं भक्तमाली श्रीराजेन्द्रदास जी के माध्यम से पूज्य श्रीसरकार जू के चरणों में कृपा याचना की जो फलीभूत हुई। वैसे तो श्रीसरकार जू किसी के लिये प्रसाद नहीं भेजते। इससे पहले भी मेरे लिये कभी प्रसाद नहीं भेजा। फिर भी किसी अज्ञात कारण से पूज्य श्रीसरकार जू ने श्रीराधामोहनदास जी के हाथ प्रसाद भेजा। जो श्रीसरकार जू ने अपने हाथों से कई तहों में लपेटा था। प्रसाद देकर साथ ही यह भी कहा – 'ये प्रसाद केवल वो ही खायें।' जब मेरे पास श्रीराधामोहनदास जी आये तो उन्होंने प्रसाद देकर कहा – 'इसको केवल आप ही खायें, किसी दूसरे को न दें।' प्रसाद कई तहों में बंद था। सबसे ऊपर पोलोथीन था। उसके बाद कागज था। उसके बाद किसी पेड़ का सूखा पत्ता था। उस पत्ते को खोलकर देखा तो चने के दाने के बराबर एक मिश्री का टुकड़ा था। उस मिश्री के दाने के रूप में वह कृपा थी जिस कृपा से आज तक सभी भक्तगण लाभ उठा रहे हैं। अखण्ड हरिनाम संकीर्तन भी उसी कृपा का फल है। यह मिश्री का दाना क्या था यदि स्वयं श्रीसरकार जू के शब्दों में कहूँ तो यह उनका मेरे लिये ब्लैंक चेक था।

एक बार श्रीहरिबोल नाम के संत ने जो श्रीसरकार जू के पास कई – कई महीने रहा करते थे, उन्होंने बरसाना आश्रम में आकर मुझसे कहा कि श्रीसरकार जू ने एक बार प्रवचन करते हुए सबके बीच में कहा कि मैंने करुण स्वरूप (मेरा पूर्व का नाम) को ब्लैंक चेक दिया है। यह बात मैं आत्मप्रशंसा के लिये नहीं बता रहा हूँ। उनकी सामर्थ बता रहा हूँ कि वो कितने समर्थशाली थे।

एक बार जब श्रीराधामोहनदास जी श्रीसरकार जू के दर्शन को जाने लगे तो मुझे भी साथ चलने को कहा। मन में मिलने की चटपटी तो थी ही। फिर क्या था। मैं भी साथ चलने को तैयार हो गया। दरभंगा तक ट्रेन से फिर दरभंगा से सुपोल तक, जो लगभग दरभंगा से 40 कि.मी. पड़ता है, बस द्वारा पहुँचे। फिर वहाँ से लगभग 4 कि.मी. पैदल चलकर पोखराम गाँव पहुँचे। इसी गाँव में श्रीसरकार जू के परम प्रेमी भक्त के घर रात्रि भोजन एवं विश्राम किया। अगले दिन फिर पैदल ही कमला नदी के किनारे –

किनारे ददोखर गाँव पहुँचे। यहीं पर श्रीसरकार जू ने प्रिया–प्रियतम श्रीराधामाधव की निभृत निकुंज की स्थापना की है। मन्दिर दर्शन करके यहाँ सब संतों से मिले। दिनभर श्रीसरकार जू की चर्चा होती रही।

यहाँ से लगभग 2 कि.मी. दूर बलाह नाम का एक गाँव है। इसी गाँव में पूज्य श्रीसरकार जू अपने किसी प्रेमी भक्त के खाली मकान में निवास करते थे। दिन में केवल एक बार संध्या के समय सत्संग के लिये अपनी कुटिया से बाहर आँगन में आया करते थे। आँगन चारों तरफ से छोटे–छोटे पौधों की बाढ़ से घिरा हुआ था। इस मकान में श्रीसरकार जू के सिवा और दूसरा कोई नहीं रहता था। श्रीसरकार जू के सत्संग एवं दर्शन के लिये जितने संत आते वो सब ददोखर निभृत निकुंज के पास बनी घास की कुटियों में ही रहते थे। संध्या के समय सभी साधक भक्तजन, संतगण श्रीसरकार जू के सत्संग एवं दर्शन के लिये नित प्रति यहीं से बलाह गाँव जाते।

श्रीसरकार जू के दर्शनों की छटपटी के कारण मैं और श्रीराधामोहनदास जी उन संतों से पहले ही मिलने के लिये चल दिये। लगभग 2 कि.मी. पैदल चलकर नौका द्वारा कमला नदी पार की। फिर खेतों के बीच से होते हुए चले।

श्रीराधामोहनदास जी ने दूर से हाथ उठाकर कहा–'वो सामने जो मकान दिख रहा है, इसी में श्रीसरकार जू रहते हैं।' उस समय श्रीसरकार जू भक्तों के बीच बैठे भगवद्चर्चा कर रहे थे। एक तो दूरी, दूसरे आँगन के चारों ओर छोटे–छोटे पौधों की बाढ़ थी जिसके कारण न तो हमें बाढ़ के भीतर कुछ दिखाई देता था और न ही भीतर बैठने वालों को बाहर। उसी समय न जाने श्रीसरकार जू को क्या सूझी। चर्चा करते–करते बीच में ही उठे। अकेले ही बाहर गली में आये और हमारी तरफ बढ़ने लगे। जब दूरी कुछ कम हुई तो श्रीराधामोहनदास जी ने मुझसे कहा–'लगता है श्रीसरकार जू आ रहे हैं।' मैंने तो इससे पहले कभी श्रीसरकार जू के दर्शन नहीं किये थे और न ही श्रीसरकार जू ने मुझे कभी देखा था। उनको दूर से देखते ही मन में एक विचित्र सी हलचल मच गई। ज्यों–ज्यों दूरी कम होती गई दिल की धड़कने बढ़ती गई। दूर से दर्शन करके लगा, जैसे पहले

कभी देखा है। फिर ध्यान में आया इस रूप को स्वप्न में देखा था। इस साक्षात् स्वरूप में एवं स्वप्न वाले स्वरूप में बस इतना ही अन्तर था कि यहाँ दाढ़ी नहीं है स्वप्न में दाढ़ी थी। बिल्कुल साधारण वेशभूषा, नंगे पाँव, श्वेत धोती-बनियान पहने, कंधों पर गमछा रखे, माथे पर सुन्दर रामानन्दी तिलक, बिल्कुल श्वेत सिर के केश, मंद मुस्कान, नेत्रों की विचित्र आभा, मस्ती भरी चाल देखते ही बनती थी। श्रीसरकार जू दोनों हाथ जोड़े हमारी तरफ बढ़ रहे थे और मैं श्रीसरकार जू के लिये भेंट सामग्री हाथ में लिये उनकी तरफ बढ़ रहा था। मैं सोचने लगा कि जब श्रीसरकार जू बिल्कुल पास आयेंगे तो धरती पर लेटकर साक्षात् दण्डवत प्रणाम करूँगा। उनके चरणों में लिपट जाऊँगा। जब तक नहीं उठायेंगे तब तक नहीं उठूँगा। यद्यपि श्रीसरकार जू किसी को छूते नहीं थे और न ही कोई उनको छू सकता था। ये बात मुझे श्रीराधामोहनदास जी ने बता रखी थी। फिर भी न जाने क्यों मन में आया श्रीसरकार जू के गले लगूँगा। उनके हृदय से चिपट जाऊँगा। साथ ही ऐसा करने के लिये संकोच भी हो रहा था। डर भी लग रहा था कि कहीं ऐसा करने में अपराध न हो जाए। मैं तो श्रीसरकार जू के पास आने की प्रतीक्षा में उनकी ओर बढ़ा चला जा रहा था। उधर श्रीसरकार जू ने मुझसे पहले ही धरती पर सिर रखकर प्रणाम किया। उनको इस प्रकार करते देख हम दोनों भी दण्डवत् प्रणाम करने लगे। जब मैं दण्डवत् करके उठा तो मैंने अपने बिल्कुल पास श्रीसरकार जू को मुस्कराते हुए खड़ा पाया। उस समय मैं समझ नहीं पा रहा था क्या करूँ, क्या बोलूँ। किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना हाथ जोड़े मूकवत् खड़ा सोचता रहा।

उसी समय श्रीसरकार जू श्रीराधामोहनदास जी से बोले - 'ये करुण स्वरूप जी हैं ना?' श्रीराधामोहनदास जी को मेरा परिचय कराने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। श्रीराधामोहनदास जी ने स्वीकारोक्ति में सिर हिलाते हुए कहा - 'जी'। जी शब्द सुनते ही श्रीसरकार जू ने मेरा संकोच व भय दूर करते हुए एवं अपने नियम को ताक पर रखते हुए मुझे आलिंगन दान दिया, हृदय से लगाया। मन की इच्छा पूरी होते देख हृदय प्रेम से भर गया और वह प्रेम आँखों से छलकने लगा। इतने पर भी न जाने क्यों मेरी बाहें अपने में ही सिमटी रहीं। चाहकर भी मैं अपने जीवन सर्वस्व को बाँहों

में न भर सका। उन्होंने मुझ नगण्य को, साधनहीन एक तुच्छ कींट को अपने हृदय से लगाया क्या ये कोई साधारण बात थी? कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली? बाह्य जगत् में तो भले ही यह दृश्य कुछ पल के लिये घटित हुआ हो, परंतु अन्तर्जगत् में मैं आज भी उनकी बाहों में हूँ, उनकी गोद में हूँ। उन्हीं की कृपा दृष्टि का याचक एक छोटा-सा अदना-सा बालक हूँ। आज भी उनकी छत्रछाया में हूँ।

## श्रीसरकार जू का महाप्रयाण (निकुंज प्रवेश)

अभी दो दिन पूर्व (6 जनवरी 2014) दिल्ली से व बरसाना से फोन द्वारा सूचना मिली कि 'श्रीसरकार जू आज दोपहर 11 बजे नश्वर शरीर त्यागकर श्रीराधामाधव की नित्य लीला में प्रवेश कर गये हैं। कल वृन्दावन यमुना किनारे उनका संस्कार होगा। समय पर पहुँच जायें। महाराज जी को बता देना।' दीदी जी ने फोन सुनकर मुझे बताया। सुनते ही मैं सन्न सा रह गया। श्रीसरकार जू के साथ बीते दिनों का स्मरण होने लगा। एक- एक करके चलचित्र की तरह उनकी बातें मानस पटल पर उभरने लगीं। जैसे-तैसे रात बीती। सुबह 7 बजे गाड़ी से वृन्दावन पहुँचे। किशोरी शरण जी एवं सुनील भाटिया जी भी साथ ही थे।

गौशाला में श्री सरकार जू लाल चुनरी ओढ़े तख्त पर ऐसे लेटे जैसे गहरी नींद में कोई ब्रज बाला सो रही हो और स्वप्न में श्रीराधामाधव की केलि विलास लीला देखने में मग्न हो रही हो। इतनी मग्न कि चारों तरफ शोर एवं संकीर्तन का उच्च स्वर भी उसकी नींद भंग नहीं कर पा रहा है। ऐसा बिल्कुल भी नहीं लग रहा था कि श्रीसरकार जू का मृत देह है। यद्यपि श्रीसरकार जू की आयु इस समय 92 वर्ष की हो चुकी थी तो भी देखने में 60-65 वर्ष के लगते थे। मुख पर कहीं भी अति वृद्धावस्था के कारण पड़ने वाली झुरियाँ नहीं थीं।

तख्त के पास ही भजन मण्डली हारमोनियम, ढोलक व मंजीरा आदि के साथ हरिनाम संकीर्तन कर रही थी। बीच-बीच में श्रीसरकार जू के पसंदीदा रस विलास के पदों का गायन भी हो रहा था। जिन-जिन संतों को समाचार मिला सभी एक-एक करके श्रद्धा सुमन अर्पण कर अपने

जीवन को कृत – कृत्य कर रहे थे। 11 बजे के करीब विमान सजाया गया। विमान में श्रीसरकार जू का परम पावन शरीर विराजमान करके श्रीवृन्दावन की गलियों से होते हुए सभी संत भक्तगण यमुना जी पहुँचे। सभी संतों ने बारी – बारी से विमान को कंधा दिया। विमान के आगे – आगे बैंड – बाजा, पीछे – पीछे भजन संकीर्तन करते संत, भक्त मण्डली चल रही थी। श्रीसरकार जू की अंतिम यात्रा में सम्मिलित होने वाले कदम – कदम पर अपने आपको भाग्यशाली समझ रहे थे।

गाय गोबर के उपलों, ब्रज काष्ठ, तुलसी काष्ठ एवं चन्दन काष्ठ से चिता बनाई गई। श्रीसरकार जू के शरीर को यमुना के अंदर ले जाकर स्नान कराया गया। फिर भगवद् प्रसादी वस्त्र धारण कराके गोपीचन्दन व ब्रज रज से द्वादश तिलक धारण कराये गये। तदोपरांत आरती करके परम पवित्र देह को चिता पर पधराया गया। उस समय सभी संतों ने श्रीहरिनाम संकीर्तन करते हुए चन्दन, तुलसी एवं ब्रज काष्ठ चिता में अर्पण की।

फिर क्या था, वही हुआ, बड़े – बड़े ऋषि, मुनि एवं योगी अमलात्मा जिसकी कामना करते हैं। किसी महाभाग्यशाली को ही ये प्राप्त होता है। देह रूपी रज ब्रज रज में मिलकर ब्रज रज हो गयी। देह ब्रज रज से एक हुई और आत्मा अपने प्रिया – प्रियतम श्रीराधा माधव की नित्य निकुंज लीला में सहचरी रूप से प्रवेश कर गयी।

## श्री सरकार जू का अद्‌भुत जीवन

भक्ति महारानी कब किस पर कृपा करे, किसके हृदय को अपना निवास स्थान बनाये, यद्यपि इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता तथापि इतना तो कहा ही जा सकता है कि भक्ति के बीज को पनपने के लिये मान शून्यता, निराभिमानता, दीनता व नम्रता का भाव आपेक्षित है। जो अमानी, दीन व विनम्र नहीं है वहाँ भक्ति ठहरती ही नहीं।

**सो अनन्य जाके असि मति न टरै हनुमंत ।**
**मैं सेवक सचारचर रूप स्वामी भगवंत ।।**

वही अनन्य भक्त है जिसकी मति से यह विचार एक पल के लिये भी नहीं जाता कि चर – अचर समस्त जीव मेरे स्वामी परमात्मा का ही रूप

हैं और मैं सबका सेवक हूँ।

जो सबको मान देता है और आप अमानी बनकर रहता है वह भक्त भगवान् को प्राणों के समान प्रिय है।

**सबहिं मानप्रद आप अमानी । मोहि प्रान सम अस मम बानी ।।**

विष्णुसहस्त्रनाम में भगवान् के सहस्त्र नामों में मानद (मान देने वाला), अमानी (मान न चाहने वाला) ये नाम भी आये हैं। भगवान् तो मानद और अमानी हैं ही, उनके भक्त भी मानद और अमानी होते हैं। ऐसा ही मानद और अमानी हृदय पाया था हमारे चरितनायक पूज्य श्री सरकार जू ने। इसलिये आपके हृदय में भक्ति फूली फली।

संत तो इनके प्राण ही थे। संत के दर्शन करते ही साष्टांग दण्डवत प्रणाम करने लगते। जो भी संत आप श्री के दर्शन करने आते तो उन संतों को कहते–'आपकी हमारे ऊपर बड़ी कृपा है। इसलिये आप मुझ जैसे साधारण जीव को अपने दर्शनों से कृतार्थ करने आये हैं। आज्ञा कीजिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

संतों की सेवा अपने हाथों से करते। यहाँ तक की कई बार तो अपने हाथों से संतों के मुख में ग्रास अर्पण करते, संतों की आरती उतारते, कभी संतों के चरण धोकर उनका चरणामृत लेते।

ब्रजभूमि से जो भी आप श्री के पास दर्शन करने आते, उनको ब्रजभूमि से आया जान उनकी सेवा में जुट जाते, चरण धोते, आरती उतारते, उनकी चरण रज को अपने हृदय व माथे पर लगाते। दूसरों को मान देना और स्वयं अमानी रहना, ये तो कोई इन्हीं से सीखे।

पूज्य श्री सरकार जू कभी भिलाई इस्पात कारखाने के चीफ इंजीनियर थे, यह बात तो वो बिल्कुल विस्मरण कर गये थे। अपने प्रवचनों में या किसी वार्तालाप में इसकी कभी चर्चा नहीं करते थे। पूज्य श्री सरकार जू सैकड़ों एकड़ जमीन के मालिक थे। धर्मपत्नी, पुत्र, पुत्री आदि पारिवारिक स्वजन थे। भिलाई इस्पात कारखाने में चीफ इंजीनियर के पद पर नियुक्त रहकर अपने ढंग से सांसारिक सुख–वैभव का भोग कर रहे थे। अकस्मात् जीवन का अध्याय बदला, जीवन में ऐसा मोड़ आया जिसकी किसी भी स्वजन ने कल्पना भी नहीं की थी। हरा–भरा

परिवार, अपार सुख-सुविधाओं से भरा घर। सबसे सन्यास लेकर चले अपने प्रियतम को प्राप्त करने। स्वजनों का विरोध सहते अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं को लांघते व अनेक प्रकार के उतार-चढ़ावों से टकराते हुए अपनी मंजिल की ओर बढ़ते ही चले गये। अनेक दुःख, परेशानियों का सामना किया परंतु कभी हार नहीं मानी। अपने निश्चय से डिगे नहीं।

पूज्य श्री सरकार जू की साधना का मुख्य अंग था **श्रीहरि नाम का अखण्ड संकीर्तन** जो अद्यावधि कई दशकों से लगभग साठ स्थानों पर अहर्निश चल रहा है। भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीजवाहरलाल नेहरू जी के सहयोग से जर्मन जाकर इंजीनियरिंग करने वाले व चीफ इंजीनियर के पद पर प्रतिष्ठित पूज्य श्री सरकार जू के बारे में कभी किसी ने नहीं सोचा होगा कि एक दिन समस्त धन-वैभव का परित्याग कर भिक्षावृत्ति को स्वीकार करेंगे। जब पूज्य श्री सरकार जू ने नौकरी छोड़ी तो जनरल प्रोविडेंट फंड (जी०पी०एफ०) तक नहीं लिया, वोलन्टियर रिटायरमेन्ट लेकर पैंशन तक नहीं ली। इतने बड़े वैभव का परित्याग कर पूज्य श्री सरकार जू ने जीवन भर भिक्षावृत्ति से अपने जीवन का निर्वाह किया। उनके इस त्याग को देखकर किसी का भी मस्तक उनके आगे श्रद्धा से झुक जाता।

बिहार प्रांत में जिला दरभंगा के सुपोल क्षेत्र में गाँव-गाँव, गली-गली, घर-घर जाकर भगवत विमुखों से भी हरिनाम संकीर्तन करवाया। जो लोग नास्तिक थे उन्होंने संकीर्तन का विरोध किया। वो कहते थे कि ये रात भर ढोलक-मंजीरों से शोर करते और करवाते हैं, हमको सोने नहीं देते, बन्द करो ये ढोंग। संकीर्तन के नाम पर पूज्य श्री सरकार जू को कई बार उनके अपनों से ही कटु शब्दों के बाण सहने पड़े। यहाँ तक कि विरोधियों से मार तक खानी पड़ी। लेकिन आप अपने निश्चय में अडिग रहे, कभी विचलित नहीं हुए। अंत में पूज्य श्री सरकार जू के प्रभाव के आगे नास्तिक व विरोधियों को भी घुटने टेकने पड़े। जो विरोधी लोग श्री सरकार जू को मारना चाहते थे वो भी बाद में श्री सरकार जू के अनन्य सेवक बन गये।

उस क्षेत्र को संतों ने मिन्नी वृन्दावन का नाम दिया। यहाँ पर ब्रजवासियों की तरह एक दूसरे का अभिवादन राधे-राधे कहकर ही करते हैं। यहाँ के लोगों में संतों के प्रति विशेष आदर-मान का भाव देखने को मिलता है। माथे ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक व गले में कण्ठी प्रायः यहाँ के लोग धारण करते हैं। यहाँ आकर ऐसा बिल्कुल नहीं लगता कि हम ब्रजभूमि से बाहर बिहार में हैं। गाँव-गाँव में अखण्ड हरिनाम संकीर्तन की ध्वनि सुनाई देती है। ये सब पूज्य श्री सरकार जू का ही प्रभाव है। उन्हीं के संकल्प का क्रियान्वित रूप है।

## नानक चन्द जी वैद्य का साथियों सहित सरकार जू से मिलन

सन् 2005 में श्री नानक चन्द जी वैद्य ने मुझसे पूज्य श्री सरकार जू की महिमा सुनकर उनके दर्शनों के लिये दरभंगा जाने की इच्छा प्रकट की। मैंने सहर्ष स्वीकृति दे दी। साथ में चलने के लिये किशोरी शरण जी के माता-पिता, श्री आर०आर० गुप्ता जी व श्रीयशपाल जी भी तैयार हो गये। सभी श्री सरकार जू के पास पहुँचे। श्री सरकार जू ने अपने सेवकों को पहले ही बता दिया था कि यमुनानगर से कुछ भक्त लोग आनेवाले हैं। ये उनकी अचिन्तय शक्ति का ही प्रभाव था।

नानक चन्द जी को मैंने कहा था कि मेरी तरफ से भी दण्डवत् प्रणाम कर देना। अपना दण्डवत् प्रणाम निवेदन करने के उपरान्त नानक जी ने मेरी तरफ से दण्डवत् प्रणाम करने से पहले पूज्य श्री सरकार जू को कहा कि यह दण्डवत् प्रणाम पूज्य श्री महाराज जी की तरफ से आपको कर रहा हूँ। ज्यों ही नानक जी ने दण्डवत् प्रणाम किया साथ ही श्री सरकार जू ने भी दण्डवत् प्रणाम किया। जहाँ श्री सरकार जू ने दण्डवत् प्रणाम किया वहाँ पक्का व स्वच्छ फर्श था, वहाँ कोई धूल-मिट्टी नहीं थी। जब श्री सरकार जू दण्डवत् प्रणाम करके उठे तो उनके हाथों में रज (मिट्टी) थी। पूज्य श्री सरकार जू ने कहा-'लो ये आपके महाराज जी के चरणों की रज है।' इस रज में से थोड़ी-थोड़ी रज सबको बाँटी। शेष रज अपने हृदय पर लगाई। ऐसा अलौकिक भाव व प्रभाव था श्री सरकार जू का।

नानक जी ने मुझसे सुन रखा था कि श्री सरकार जू ब्रजभूमि से बहुत प्रेम करते हैं, इसलिये श्री सरकार जू के लिये थोड़ी ब्रज रज ले गये थे। नानक जी ने सोचा कि श्री सरकार जू किसी से कोई वस्तु नहीं लेते तो मैं भेंट के रूप में ब्रज रज ही ले जाऊँ। मिलने पर नानक जी ने अति उत्साह पूर्वक सहर्ष भेंट के रूप में ब्रज रज श्री सरकार जू को अर्पण की। पूज्य श्री सरकार जू ने ब्रज रज हाथ में लेकर सम्मान व प्रेमपूर्वक अपने शीश व हृदय पर धारण की। ब्रज रज के दर्शन कर बहुत प्रसन्न हुए। साथ ही गंभीर मुद्रा बनाते हुए संतप्त से बोले – 'अरे इस ब्रज रज को ब्रज से दूर क्यों कर दिया?' उस दिन से नानक चन्द जी वैद्य ने नियम ही बना लिया कि कभी ब्रज रज को ब्रज से बाहर नहीं ले जाना।

पूज्य श्री सरकार जू नानक चन्द जी वैद्य को उनके साथियों सहित पास के गाँव में जहाँ – जहाँ अखण्ड कीर्तन चल रहा था, वहाँ – वहाँ ले गये। उस समय श्री सरकार जू ने कई लीलाएँ की जो विस्तार भय से यहाँ नहीं दी जा रही हैं।

श्री सरकार जू के परम कृपापात्रों में एक ऐसी परम भक्ता महिला भी थी जिनके हृदय पर स्वत: ही श्रीराधामाधव के चरण चिन्ह अंकित हो गये थे। किन्हीं भाग्यशालियों को ही पूज्य श्री सरकार जू की आज्ञा से वो इनके दर्शन कराती थीं।

इस माता ने श्री सरकार जू की आज्ञा व प्रसन्नता को ही अपना जीवन बना लिया था। वह पूज्य श्री सरकार जू के पूर्णरूपेण अनुकूल थी। पहले श्री सरकार जू का यह नियम था कि जिस दिन अखण्ड कीर्तन नहीं होगा उस दिन भोजन तो क्या पानी तक नहीं पीना है। इस नियम के बारे में इस माता को पता था। एक दिन इस माता ने श्री सरकार जू से कहा – 'जिस दिन कहीं अखण्ड कीर्तन न हो, उस दिन का अखण्ड कीर्तन मेरे घर कर लिया करें।' तब से यह नियम ही बन गया कि जिस दिन कोई अखण्ड कीर्तन न कराये उस दिन का अखण्ड कीर्तन इनके घर हुआ करता। कई बार तो इस माता को कई – कई दिन अकेले जागकर ही रात भर अखण्ड कीर्तन करना पड़ता था। माता जी की इस भावना का ही यह चमत्कार था जो इनके हृदय पर श्रीराधाकृष्ण के चरण अंकित हो गये।

श्री सरकार जू की आज्ञा से यह माता अपने हृदय को अनावरण कर भक्तों को चरण चिन्ह दर्शन करवा दिया करती थी। उन्होंने कभी किसी को अपनी इच्छा से ये चरण चिन्ह दर्शन नहीं कराये।

नानक जी व उनके साथियों पर श्री सरकार जू की कृपा हुई। श्री सरकार जू ने कृपा पूर्वक माता के हृदय पर अंकित चरण चिन्ह के दर्शन का अधिकार दे दिया। तब माता ने ब्लाउज के ऊपर का एक बटन खोलकर अपने हृदय पर अंकित श्रीराधा कृष्ण के चरण चिन्ह के दर्शन कराये।

एक बार यही माता आरती की थाली माँज रही थी। थाली में एक दाग ऐसा पड़ गया जिसको अच्छी तरह माँजने पर भी वह नहीं छूट रहा था। माता उस थाली को जितना माँजती गई उतना ही वह दाग स्पष्ट होता चला गया और अंत में उस दाग ने उसी चरण चिन्ह का आकार ले लिया जो माता के हृदय पर अंकित था। मुझे भी दो बार इन दोनों चरण चिन्हों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

एक दिन श्री सरकार जू किसी के घर गीत गोविन्द का पाठ कर रहे थे। श्री सरकार जू की पीठ मकान की कच्ची दीवार पर सटी थी। गर्मी के कारण श्री सरकार जू को पसीना आ रहा था। जब श्री सरकार जू उठे तो दीवार पर पसीने से ही स्वत: श्रीराधामाधव की आकृति बन गई। दर्शन कर लोग हैरान हो गये। दीपावली पर्व पर जब घर की लिपाई–पुताई हुई तो वह दीवार भी पोत दी गई जिस पर वह आकृति बनी थी। लेकिन महान् आश्चर्य, पोतने पर भी वह आकृति नहीं मिटी बल्कि ओर स्पष्ट हो गई।

एक बार कोई साधक जनकपुर (नेपाल) मेले के अवसर पर दुग्धमती गंगा में स्नान के लिये श्री सरकार जू से आज्ञा लेकर जाने लगा। किसी कारणवश श्री सरकार जू रोक रहे थे। वह साधक जब कुटिया से बाहर आया तो गली में लगे हैंड पम्प पर हाथ धोने के लिये उसको चलाने लगा। नल चलाते ही पानी की जगह दुग्ध आने लगा। दुग्धमती गंगा नल से ही प्रकट हो गई। गाँववालों को पता चला तो बहुत से अपने पात्रों में दुग्ध भरकर घर ले गये। पूज्य श्री सरकार जू ने उस हैंडपम्प को

श्रीराधाकुण्ड का नाम दिया। आज भी उस नल को वहाँ के लोग राधाकुण्ड ही मानते हैं।

नानक चन्द जी ने श्री सरकार जू से सेवा माँगी तो श्री सरकार जू ने कहा–'हर महीना एक दिन (पूर्णिमा) व साल में एक महीना (तीस दिन लगातार) अखण्ड संकीर्तन अपने घर रखो।' तबसे आज तक अखण्ड कीर्तन का यह नियम बिना टूटे नानक चन्द जी के घर पर चल रहा है। सन् 2005 में अखण्ड संकीर्तन के शुभारम्भ के अवसर पर मैंने उनके घर अखण्ड ज्योति जलाई थी जो आज भी लगातार दिन–रात जल रही है। अब तो नानक चन्द जी के घर कई वर्षों से सूर्यमुखी संकीर्तन भी नितप्रति हो रहा है। यह पूज्य श्री सरकार जू की कृपा का ही फल है। नानक जी के सद्प्रयास से यह सूर्यमुखी संकीर्तन लगभग तीस–पैंतीस घरों में नितप्रति चल रहा है।

अखण्ड कीर्तन की यह आज्ञा केवल नानक जी को ही नहीं हुई थी, उनके चारों साथियों को भी हुई थी। लेकिन वो सब उनकी आज्ञा का पालन कर नहीं सके, श्री सरकार जू से पूरा लाभ नहीं ले सके। यदि कोई संतों से पूरा लाभ उठाना चाहता है तो भगवान् से भी बढ़कर उनके संतों को मानो। उनकी आज्ञा को अपने जीवन में ज्यों की त्यों उतार लो। स्वयं भगवान् ने कहा–**मोते संत अधिक कर लेखा**। नानक जी ने पूज्य श्री सरकार जू से जो लाभ उठाया उनके पास रहने वाले भी वो लाभ उठा पाये हों, कह नहीं सकते।

जब नानक जी अपने साथियों सहित पूज्य श्री सरकार जू के दर्शन करके यमुनानगर लौटे तो सबसे पहले मेरे पास वृन्दावनआश्रम में आये। मैंने उन सबका फूल मालाओं से स्वागत किया। भगवद् प्रसादी अर्पण की। फिर सबकी आरती उतारी। तदोपरान्त सबको हृदय से लगाया। उस समय सबका हृदय द्रवित हो आँखों से प्रेम आँसुओं के रूप में छलकने लगा। मुझको ऐसे लगा जैसे मैं श्री सरकार जू से ही भेंट कर रहा हूँ। नानक जी ने अपनी इस सुखद व आध्यात्मिक यात्रा का जो वर्णन किया स्थानाभाव से यहाँ पूरा नहीं लिखा गया।

# चातुर्मास व्रत एवं महात्म्य

चातुर्मास्य व्रत श्रीहरि की प्रसन्नता के लिये किये जाने वाले व्रतों में से एक है। इस व्रत को साधु-सन्यासी और वैष्णव गृहस्थ सभी कर सकते हैं। यह व्रत आषाढ़ की एकादशी, द्वादशी या पूर्णिमा (गुरु पूर्णिमा) में से किसी भी दिन प्रारम्भ किया जा सकता है। परंतु इस व्रत की समाप्ति कार्तिक शुक्ल द्वादशी को ही की जाती है।

सुदर्शन चक्रावतार भगवान् श्री निम्बार्काचार्य जी के परम कृपापात्र व औदुम्बर संहिता के रचयिता श्रीऔदुम्बराचार्य जी ने औदुम्बर संहिता में इस व्रत की विशेष विधि व महिमा का गान किया है।

**इति कल्पानुकल्पाभ्यां व्रतानामुत्तमस्य च ।**
**विष्णुलोकमवाप्नोति प्रसादाच्चक्रपाणिनः ।।**

(औदुम्बर संहिता श्लोक सं० 1571)

यह व्रत समस्त व्रतों से उत्तम है, कल्प- कल्पान्तरों से प्रचलित है। चक्रपाणि भगवान् की कृपा से इस व्रत को करने वाले श्रीहरि के लोक की प्राप्ति करते हैं।

**कृत्वा व्रतं ततो भक्त्या नरो विष्णुपुरीं व्रजेत् ।**
**नाभक्ताय प्रदातव्यं न देयं दुष्टचेतसे ।।**

(औदुम्बर संहिता श्लोक सं० 1573 )

भक्ति पूर्वक इस व्रत का पालन करने वाला परम धाम वैकुण्ठ को जाता है। इस व्रत को करने से श्रीराधामाधव की परम प्रेम रूपा पराभक्ति प्राप्त होती है।

आषाढ़ शुक्ल एकादशी को अपनी दायीं भुजा के मूल में चक्र की छाप एवं बायीं भुजा की मूल में शंख की छाप अवश्य लगानी चाहिये।

**चक्रं च दक्षिणे वाहौ शंखं वामेऽपि दक्षिणे ।**
**गदां वामे गदाऽधस्तात् पुनश्चक्रं च धारयेत् ।।**

(औदुम्बर संहिता श्लोक सं० 940)

जिनके अंगों में भगवान् के शंख, चक्र आदि आयुधों के चिन्ह हों उनके शरीर में पापों का प्रवेश नहीं हो सकता, क्योंकि वैष्णव कवच से

यह सुरक्षित हो जाता है।

**सर्वांगं चिन्हितं यस्य शस्त्रैर्नारायणोद्भचैः ।**
**प्रवेशो नास्ति पापस्य कवचं तस्य वैष्णवमिति।**
**विष्णुकवचतयोक्तेः सर्वांगेष्वपि वैष्णवैः ।।**

(औदुम्बर संहिता श्लोक सं० 942)

आषाढ़ की शुक्ला द्वादशी के दिन भगवान् को क्षीरसागर में शयन कराने का उत्सव करें। वैष्णव भक्तों को बुलाकर श्रीराधाकृष्ण की विशेष पूजा, अर्चना व संकीर्तन करें।

**द्वादश्यामेव क्षीराब्धिशयनोत्सव ईह्यते ।**
**राधाकृष्णौ तदा सम्यक् सम्पूजयाहूय वैष्णवान् ।।**

(औदुम्बर संहिता श्लोक सं० 945)

इस दिन चातुर्मास का नियम लेना चाहिये। व्रत का नियम निज गुरुदेव या किसी भी संत से लें। यदि ऐसा संभव नहीं तो भगवान् के सन्मुख हाथ जोड़कर कहें– 'हे अच्युत! मैं इस वर्ष के देवतोत्त्थान तक चार महीने का नियम ले रहा हूँ। इस व्रत को आप निर्विघ्न पूर्ण कीजिये।'

**चतुरो वार्षिकान्मासान् देवस्योत्थापनावधि ।**
**करिष्ये नियममिमं निर्विघ्नं कुरुमेऽच्युत ।।**

(औदुम्बर संहिता श्लोक सं० 951)

इस प्रकार संकल्पपूर्वक नियम लेकर ही व्रत करना चाहिये। भविष्य पुराण में लिखा है कि जो व्यक्ति बिना नियम का संकल्प लिये ही व्रत या जप एवं चातुर्मास करता है, वह मूर्ख जीता हुआ भी मरे के समान है।

**यो बिना नियमं मर्त्यो व्रतं वा जप्यमेव च ।**
**चातुर्मास्यं नयेन्मूर्खो जीवन्नपि मुतो हि सः ।।**

(भविष्य पुराण)

नियम लेने के बाद भगवान् से इस प्रकार प्रार्थना करें– 'हे महाविष्णो! आपके समक्ष मैंने यह चातुर्मास व्रत का नियम ग्रहण किया है। हे केशव! आपकी कृपा से ही यह पूर्ण हो सकेगा।'

**प्रार्थना मंत्र –**

**इद्र व्रतं महाविष्णो गृहीतं पुरतस्तव ।**
**निर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादात्तव केशव ।।**

(औदुम्बर संहिता श्लोक सं० 954)

## चातुर्मास्य व्रत में पालनीय नियम

1. श्रावण में शाक, भाद्रपद में दही, अश्विन में दूध का त्याग करें।

**तत्रतु श्रावणे शांक भाद्रपदे दधि त्यजेत् ।**
**पय आश्विने चोर्जे विशेषमन्यदुत्तरे ।।**

(औदुम्बर संहिता श्लोक सं० 956)

2. चातुर्मास में उड़द न खायें। सनकादिकों ने कहा है – 'हरि भक्ति चाहने वाला चातुर्मास व्रत लेने पर राजमास (उड़द) का भक्षण न करे।'

**निष्पावराजमाषादि भक्तिकामनया त्यजेत् ।**
**चातुर्मास्ये निषिद्धं हि तथोक्तं सनकादिभिः ।।**

(औदुम्बर संहिता श्लोक सं० 957)

3. कलिंग (तरबूज), पटोल (परमल), वृन्तांक (बैंगन) इनको देवशयन के बाद चातुर्मास में जो कोई भक्षण करता है, उसके पुण्य जल जाते हैं। इसलिये सनकादिकों ने जिन – जिन कर्त्तव्यों का वर्णन किया है, वही करना चाहिये।

**कलिंगानि पटोलानि वृन्ताकं सन्धितानि च ।**
**एतानि भक्षयेद् यस्तु सुप्ते देवे जनार्द्दने ।।**

(औदुम्बर संहिता श्लोक सं० 960)

4. दिवाभोजन अर्थात् सूर्यास्त से पहले भोजन ग्रहण करें।

5. पत्र, पुष्प, फल, जल, नैवेद्य, धूप, दीप, आरती आदि द्वारा नित् प्रति अपने इष्टदेव का यथाशक्ति पूजन अर्चन करें।

6. नित्यप्रति गोसेवा निमित्त दान करें।

7. जप संख्या अवश्य बढ़ायें।

8. नित्यप्रति इष्टदेव का मानसिक पूजन व रूप, लीला का चिंतन

करें।

भगवत् प्रीत्यार्थ और भी बहुत से धार्मिक कृत्य आप अपने नित् नियम में सम्मिलित कर सकते हैं। ध्यान रहे कोई भी ऐसा नियम ग्रहण न करें जिसका आप चार महीने तक निर्वाह न कर सकें।

मासिक धर्म (रजस्वला) होने पर स्त्रियाँ इष्टदेव का पूजन न करें। उन दिनों केवल मानसिक पूजन ही करें। ऐसा करने पर नियम खण्डित नहीं होगा।

शरीर में रोग होने से अति निर्बल अवस्था आने पर यदि कोई नियम टूट जाये तो क्षम्य है। पूरा प्रयत्न करो कि नियम न टूटे। यदि रोग स्थिति में नियम टूट जाये तो कोई चिंता की बात नहीं, स्वस्थ होने पर फिर उस नियम का निर्वाह करें।

इस प्रकार चातुर्मास नियमों का निर्वाह करते हुए कार्तिक की शुक्ल द्वादशी को वस्त्र, आभूषण आदि से श्रीगुरुदेव का पूजन कर व्रत की पूर्ति करके वैष्णव भक्तों के साथ भोजन करें।

**ततो गुरुं च सम्पूज्य वस्त्रालंकारवस्तुभिः ।**
**चातुर्मास्यस्य नियमं त्यक्त्वा भुंजीत वैष्णवैः ।।**

(औदुम्बर संहिता श्लोक सं० 1574)

इस प्रकार भगवान्, ज्ञान प्रदायक गुरु और साधुओं की पूजा करके व्रत करनेवाला साधक वैष्णव लोक की प्राप्ति करता है।

**कृष्ण रुप गुरुदेव नमन ।**
**ज्ञान विराग भक्ति के दाता, मोह अज्ञान हरन ।।**
**करुणा कृपा दया की मूरति, संपत्ति प्रेम सदन ।**
**वचनामृत भव रोग औषधी, नासहिं जनम मरन ।।**
**जग बिसार हिय युगल बसाऊँ, करूँ सदा सुमिरन ।**
**करुण दास पुजवहु मम आशा, आयो तुम्हरी शरन ।।**

# कार्तिक मास व्रत (मासोपवास) महिमा

कलियुग के प्रारम्भिक काल में आज से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व इस धरा धाम पर निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीनिम्बार्काचार्य जी प्रकट हुए, जो भगवान् नारायण की आज्ञा से इस भूतल पर श्रीराधामाधव की परम प्रेमरूपा भक्ति के संस्थापनार्थ प्रकट हुए। ये आचार्य प्रवर वैकुण्ठादिपति भगवान् श्रीहरि के आयुध श्री सुदर्शन चक्र के अवतार हैं। श्रीनिम्बार्काचार्य जी निकुंजेश्वरी श्रीराधा रानी की प्रिय सखी श्रीरंगदेवी जी के भाव में ही सदा अवस्थित रहते हैं। आप स्वयं श्रीरंगदेवी जी के रूप में सदा रसधाम श्रीवृन्दावन की निकुंजों में नित्य बिहार संलग्न श्रीश्यामा – श्याम की सेवा में निमग्न रहते हैं। स्वयं निकुंज रस का पान करते हुए शरणागत जनों को भी अधिकारी बनाकर इसका रसास्वादन कराते हैं।

एक बार श्रीनिम्बार्काचार्य जी अपने पट्शिष्य श्रीनिवासाचार्य जी व परम कृपा पात्र शिष्य श्रीऔदुम्बराचार्य जी को पराभक्ति का उपदेश कर रहे थे। इसी प्रसंग में चातुर्मास व्रत व कार्तिक व्रत (मासोपवास) की महिमा का व्याख्यान दिया। तब श्रीऔदुम्बराचार्य जी ने उन उपदेशों को लिपिबद्ध कर औदुम्बर संहिता के नाम से ग्रंथ का प्रणयन किया।

औदुम्बर संहिता के रचयिता श्री औदुम्बराचार्य जी का प्राकट्य गूलर (ऊदुम्बर) के फल से उस समय हुआ जब वृक्ष से एक फल टूटकर श्रीनिम्बार्काचार्य जी के चरण पर गिरा। चरण का स्पर्श प्राप्त करते ही गूलर का फल फटा और उसमें से एक ऋषि प्रकट हुए। गूलर (ऊदुम्बर) से प्रकट होने के कारण यह ऋषि औदुम्बराचार्य कहलाए।

इन्हीं औदुम्बराचार्य जी ने ज्ञानाभिमानी एक पंडित विद्यानिधि को शास्त्रार्थ में पराजित कर उनको उनका मत त्याग करवाकर वैष्णव मत स्वीकार करने पर विवश कर दिया। तदनन्तर यही पंडित विद्यानिधि श्रीनिम्बार्काचार्य जी का प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर आचार्य श्री के चरणों में शरणागत हुए। तब श्रीनिम्बार्काचार्य जी ने कृपा कर वैष्णव पंच संस्कार पूर्वक वैष्णव दीक्षा देकर इनका नाम श्रीनिवासाचार्य जी रखा और श्रीनिम्बार्काचार्य जी के बाद प्रथम निम्बार्क पीठाधीश्वर के रूप में आप

(श्रीनिवासाचार्य जी) आचार्य पीठ पर सुशोभित हुए। निम्बार्क सम्प्रदाय में आपको पाञ्चजन्य शंख का अवतार मानते हैं।

अपने गुरुदेव श्रीनिम्बार्काचार्य जी की आज्ञा से औदुम्बराचार्य जी ने कुरुक्षेत्र (ग्राम पवनावा) में अपना तपोस्थल चुना। आज भी यहाँ पर श्रीऔदुम्बराचार्य जी का मन्दिर व आश्रम है।

## औदुम्बर संहिता में वर्णित मासोपवास (कार्तिक) व्रत के कृत्यों की महिमा

यह मासोपवास व्रत कार्तिक स्नान व्रत, नियम सेवा आदि नामों से भी प्रसिद्ध है। वैसे तो इस व्रत को कोई भी कर सकता है परंतु जिन्होंने वैष्णव दीक्षा ली है, वे इस व्रत को अवश्य करें। यह व्रत अश्विन शुक्ला एकादशी से प्रारम्भ होता है और इस व्रत का समापन तीस दिन के बाद कार्तिक की शुक्ला एकादशी (देवउठनी एकादशी) अर्थात् प्रबोधिनी एकादशी को होता है। इसी दिन चातुर्मास व्रत का भी समापन होता है। तीस दिन का यह व्रत होने के कारण इस व्रत को मास उपवास भी कहते हैं। जनसाधारण में यह व्रत कार्तिक स्नान के रूप में विख्यात है।

**वेदैरधीतैः किं तस्य पुराणैः पठितेश्च किम् ।**
**कृतं यदि न विपेन्द्र कार्तिके व्रतमुत्तमम् ।।**

जो कार्तिक का व्रत नहीं करते, उनका वेद-पुराण आदि पढ़ना-पढ़ाना भी व्यर्थ है।

**एकतः सर्वतीर्थानि सर्वयज्ञाः यदक्षिणाः ।**
**कार्तिकस्य तु मासस्य कोटयंशमपि नार्हति ।।**

सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा एवं दक्षिणा सहित समस्त यज्ञ भी कार्तिक व्रत की समता नहीं कर सकते।

**एकतः पुष्करे वासः कुरुक्षेत्रे हिमालये ।**
**एकतः कार्तिको मासः सर्वपुण्याधिको मतः ।।**

पुष्कर, कुरुक्षेत्र, हिमालय के निवास के पुण्य फल से भी कार्तिक व्रत का पुण्य अधिक है।

**सुवर्णमेरुतुल्यानि सर्वदानानि चैकतः ।**
**एकतः कार्तिको वत्स सर्वदा केशवप्रियः ।।**

हे वत्स! सुमेरु पर्वत तुल्य स्वर्ण दान भी केशव प्रिय कार्तिक व्रत के समान नहीं है।

**यत्किंचित् क्रियते पुण्यं विष्णुसुद्दिश्य कार्तिके ।**
**तदक्षयं भवेत्सर्वं सत्योक्तं तव नारद ।।**

कार्तिक में भगवान् के निमित्त जो भी कुछ पुण्य किया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है।

**हुतं दत्तं तु विपेन्द्र तपश्चै व तथा कृतम् ।**
**तदक्षयं फलं प्रोक्तं विष्णुना लोकसाक्षिणा ।।**

कार्तिक में हवन किया हुआ, दान दिया हुआ, तप किया हुआ सब अविनाशी फलदायक होता है।

**वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे नैमिषे पुष्करेऽर्बुदे ।**
**गत्वा फलं यदाप्नोति व्रतं कृत्वा तु कार्तिके ।।**

वाराणसी, कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, पुष्कर व आबू की यात्रा से जो फल मिलता है वह सब कार्तिक व्रत करने से मिल जाता है।

**शालिग्रामशिलाग्रे तु यः कुर्यात् स्वस्तिकं शुभम् ।**
**कार्तिके तु विशेषेण पुनात्यासप्तमं कुलम् ।।**

जो कार्तिक में शालिग्राम के सम्मुख चन्दन या रोली से स्वस्तिक (卐) बनाता है, वह अपने सात कुलों को पवित्र कर देता है।

**कार्तिके कार्तिकी यावत् स्वस्तिकं केशवाग्रतः ।**
**या करोति महाभक्तया सा स्वर्गाच्च्यवते नहि ।।**

जो स्त्री कार्तिक में पूर्णिमा तक भक्ति पूर्वक भगवान् के आगे स्वास्तिक लिखती है वह कभी भी पुण्य लोक से पतित नहीं होती।

**जागरं कार्तिके मासि यः करोत्यरुणोदये ।**
**दामोदराग्रे विपेन्द्र मोसहस्रफलं लभेत् ।।**

हे द्विजेन्द्र! जो कार्तिक में भगवान् दामोदर के मन्दिर में रात्रि

अरुणोदय तक जागरण करता है, उसे हजारों गौ दान के समान फल मिलता है।

**जागरं पश्चिमे यामे यः करोति महामुने ।**
**कार्तिके सन्निधौ विष्णोस्तत्पदं करसस्थितम् ।।**

हे महामुने! जो कार्तिक की रात्रि में पिछले पहर तक भगवान् के मन्दिर में जागरण करते हैं, मुक्ति उनके हाथ में आ जाती है।

**साधुसेवा गवां ग्रासः कथा विष्णोस्तथार्चनम् ।**
**जागरं पश्चिमे यामे दुर्लभं कार्तिके कलौ ।।**

कार्तिक मास में साधु सेवा, गौ ग्रास, कथा श्रवण, हरि पूजन और ब्रह्ममुहूर्त में निद्रा त्याग यह कलियुग में दुर्लभ माने गये हैं।

**जन्म कोटि सहस्रैस्तु मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।**
**कार्तिके चार्चितो विष्णुस्त्यक्त्वान्ते यमयातना ।।**

करोड़ों जन्मों के पश्चात् दुर्लभ मनुष्य शरीर को प्राप्त करके कार्तिक में जो भगवान् की पूजा करता है, वह यम यातना नहीं भोगता।

**संनिहत्यां कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवा करे ।**
**सूर्यवारेण यः स्नाति तदेकाहेन कार्तिके ।।**

रविवारी अमावस्या को सूर्य ग्रहण के समय जो कुरुक्षेत्र के स्नान से फल मिलता है, वह कार्तिक के किसी एक दिन के स्नान से प्राप्त हो जाता है।

**कार्तिके मुनिशार्दूल स्वशवत्या वैष्णवं व्रतम् ।**
**यः करोति यथोक्तं तु मुक्तिस्तस्य सुनिश्चला ।।**

हे मुनिराज! अपनी शक्ति के अनुसार जो वैष्णव कार्तिक व्रत करता है, उसकी निश्चय ही मुक्ति हो जाती है।

**तुलसीदलपुष्पाणि ये यच्छन्ति जनार्दने ।**
**कार्तिके सकलं वत्स पापं जन्मायुतं दहेत् ।।**

जो सज्जन कार्तिक में भगवान् पर तुलसी दल चढ़ाते हैं, हे वत्स! उनके हजारों जन्मों के समस्त पाप भस्म हो जाते हैं।

**दृष्टा स्पृष्टाथवा ध्याता कीर्तिता नमिता स्तुता ।**

**रोपिता सिंचिता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा ।।**

कार्तिक में तुलसी के दर्शन, स्पर्शन, ध्यान, कीर्तन, नमन, स्तवन, आरोपण, सिंचन तथा नित्य पूजन करना शुभ है।

**नवधा तुलसीभक्तिं ये कुर्वन्ति दिने दिने ।**
**युग कोटि सहस्राणि ते वसन्ति हरेर्गृहे ।।**

उपर्युक्त नौ प्रकार से जो तुलसी की आराधना करते हैं, वे हजारों – करोड़ों (अनन्त) युगों तक भगवान् के धाम में निवास करते हैं।

**द्रष्टवा क्रतुशतैः पुण्यं दत्त्वा रत्नान्यनेकशः ।**
**तुलसीदलैस्तत्पुण्यं कार्तिके केशवार्चनात् ।।**

सैकड़ों यज्ञ और अनेक रत्नों के दान करने से जो पुण्य होता है वह कार्तिक में तुलसी दलों से भगवान् की पूजा करने से प्राप्त हो जाता है।

**प्रदक्षिणं यः कुरुते कार्तिके विष्णुसपद्मनि ।**
**पदे पदे अश्वमेधस्य फलभागी भवेन्नरः ।।**

कार्तिक में भगवान् के मन्दिर की परिक्रमा करने वाले को पग – पग में अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है।

**गीतं वाद्यं च नृत्यं च कार्तिके पुरतो हरेः ।**
**यः करोति नरो भक्त्या लभते चाक्षयं पदम् ।।**

कार्तिक में जो भगवान् के सम्मुख पदों को गाता हो, बजाता हो और नाचता हो उसे अक्षय फल की प्राप्ति होती है।

**तथैव सर्वपितृणामाशंसा जायते सदा ।**
**भविष्यति कुलेऽस्माकं पितृभक्तः सुतो भुवि ।**
**कार्तिके दीपदानेन यस्तोषयति केशवम् ।।**

सभी पितर यह आशा करते हैं कि हमारे कुल में कोई ऐसा पितृ भक्त पैदा हो जो कार्तिक में दीप दान द्वारा भगवान् को संतुष्ट कर दे।

**घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः ।**
**ज्वल्यते मुनिशार्दूल अश्वमेधैस्तु तस्य किम् ।।**

घी अथवा तिलों के तेल से जिसने भगवान् को दीप दान किया उसे अश्वमेध आदि यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं।

**तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः कृतं तीर्थावगाहनम् ।**
**दीपदानं कृतं येन कार्तिके केशवाग्रतः ।।**

जिसने कार्तिक में भगवान् को दीप दान दिया है, उसने समस्त यज्ञ और तीर्थों को कर लिया है।

**दीपपंक्तेश्च रचना सबाह्याभ्यन्तरं हरेः ।**
**विष्णोर्विमाने कुरुते स नरः शंखचक्रधृक् ।।**
**दिवि देवा निरीक्षन्ते विष्णुदीपप्रदं नरम् ।**
**कदा भविष्यत्यस्माकं संगमः पूर्वकर्मणा ।।**

भगवान् के मन्दिर को बाहर एवं भीतर दीपक की पंक्तियों से जो सजाता है, वह शंख-चक्रधारी विष्णु के समान समझा जाता है। देवता देवलोक में ऐसी प्रतीक्षा करते रहते हैं-हमारे पूर्व कर्मों से भगवान् के दीपक लगाने वाले सज्जन से हमारा कब समागम होगा?

## विष्णुरहस्य ग्रन्थ में
## मासोपास (कार्तिक) व्रत की महिमा

विष्णु रहस्य ग्रन्थ में नारद जी ने ब्रह्मा जी से पूछा- 'समस्त व्रतों में उत्तम व्रत कौन सा है? इसका फल, विधान मैं सुनना चाहता हूँ।' ब्रह्मा जी ने कहा- 'तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया। जो प्राणियों के लिये श्रेष्ठ व्रत है वह मैं तुमको सुनाता हूँ। जिस प्रकार देवों में विष्णु, तेजों में सूर्य, पर्वतों में सुमेरु, पक्षियों में गरुड़, तीर्थों में गंगा उसी प्रकार सभी व्रतों में मासोपवास व्रत (कार्तिक व्रत) श्रेष्ठ है।

**सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।**
**सर्वदानोद्भवं वापि लभेन्मासोपवास कृत् ।।**

जो फल समस्त तीर्थ, व्रत और दानों से मिलता है वह मासोपवास से मिल जाता है।

**तेन जप्तं हुतं दत्तं तपस्तप्तं सुधाकृता ।**

**यः करोति विधानेन व्रतं मासोपवासनम् ।।**

जिसने विधिवत् मासोपवास किया हो उसने समझ लो जप, तप, यज्ञ, दान सब कुछ कर लिया।

**अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्विधिवद् भूरिदक्षिणैः ।**
**न तत्पुण्यमवाप्नोति यन्मासपरिलंघमात् ।।**

विधिवत् बहुत दक्षिणा वाले अग्नि इष्ट होम आदि यज्ञों से भी उतना फल नहीं मिलता जितना कि मासोपवास से मिलता है।

**प्रविश्य वैष्णवं यज्ञं तत्राभ्यर्च्य जनाद्र्दनम् ।**
**गुरोराज्ञां ततो लब्ध्वा कुर्यान्मासोपवासनम् ।।**

वैष्णवी दीक्षा लेकर जनार्दन प्रभु की पूजा करने के अनन्तर गुरुदेव की आज्ञा लेकर मासोपवास करें।

**वैष्णवानि यथोक्तानि कृत्त्वा सर्वव्रतानि तु ।**
**द्वादश्यादीनि पुण्यानि ततो मासमुपावसेत् ।।**

तीस दिन के मासोपवास में एकादशी आदि वैष्णव व्रत अवश्य करें।

**आश्विनस्यामले पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।**
**व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद् यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ।**
**वासुदेवं समुद्दीश्य कार्तिकं सकलं नरः ।।**
**मासं चोपवसेद्यस्तु स मुक्तिफलभाग्भवेत् ।**

अश्विन शुक्ला एकादशी को एक महीने का मासोपवास व्रत ग्रहण करें और सम्पूर्ण कार्तिक मास तक भगवान् की आराधना करें। जो मासोपवास करता है वह मुक्त हो जाता है। तुलसीदल, पुष्प, कपूर, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य द्वारा समर्थ अनुसार नित्य श्रीहरि का पूजन करें।

## व्रत के नियम

1. प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करें। श्रीराधा दामोदर को अर्घ्य दें।
2. नित्य ही एकादशी की तरह फलाहार करें। यदि ऐसा ना हो

सके तो दिन में केवल एक बार ही अन्न ग्रहण करें।

3. पत्र – पुष्प व दीप – धूप से नित्य भगवान् का पूजन करें।

4. हर समय नाम जप व चिंतन करने का प्रयत्न करें।

5. दिन में एक बार रस्सी (दाम) द्वारा ऊखल से बंधे बालरूप दामोदर का चिंतन अवश्य करें। उदर में दाम से बंधे होने से भगवान् का नाम दामोदर पड़ा। ऊखल बंधन की यह लीला कार्तिक मास में हुई थी। इसलिये कार्तिक मास को दामोदर मास भी कहा जाता है।

6. पापों से बचें एवं जितना हो सके इन्द्रियों का संयम करें।

7. एक मास तक तेल की मालिश न करें।

8. कांस्य बर्तन में भोजन न करें।

9. बैंगन व दाल न खायें।

10. हो सके तो कार्तिक बहुला अष्टमी (अहोई अष्टमी) को राधाकुण्ड स्नान करें।

11. भगवान् को अर्पित नैवेद्य ही ग्रहण करें।

12. सूर्यास्त के बाद भोजन ग्रहण न करें।

13. कार्तिक कृष्णा द्वादशी को गुरु व गुरु परम्परा का पूजन अवश्य करें।

14. कृष्णा त्रयोदशी को श्रीराधाकृष्ण का पूजन कर संध्या को धर्मराज के लिये घर में तैयार देशी घी या तिल के तेल का दीपक जलायें क्योंकि आजकल बाजार के देसी घी में भी मिलावट होती है।

15. कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को घर में स्नान करके, हो सके तो किसी पास के तीर्थ में स्नान करें व संध्या को भगवान् शंकर व भगवती दुर्गा एवं लक्ष्मी के निमित्त घर के देसी घी या तिल के तेल का दीपक जलायें।

16. पितरों के निमित्त घी के तीन दीपक भगवान् के आगे जलायें। ऐसा करने से अस्त्र – शस्त्र से मरे हुए पितरों की भी मुक्ति हो जाती है। इसी दिन दिन में लक्ष्मी का स्वरूप मानकर कुँवारी कन्या को भोजन करायें।

17. अमावस्या को संध्या के समय लक्ष्मी पूजन करके रात्रि को

बारह बजे तक राधा जागरण करें क्योंकि देवउठनी एकादशी से बारह दिन पूर्व लक्ष्मी स्वरूपा राधा जी जागती हैं।

18. रात्रि में श्रीराधाकृष्ण के आगे दीप जगाकर दीपोत्सव (दीपावली) मनायें। दीपदान की महिमा आप पूर्व में पढ़ चुके हैं। दीपदान का अर्थ किसी को दीपक दान करना नहीं अपितु दीपक जलाना है।

19. कार्तिक की शुक्ल प्रतिपदा को गोबर निर्मित गोवर्धन पूजन करें। तदनन्तर नैवेद्य के रूप में छप्पन भोग या सामर्थ्य अनुसार उत्तम भोग गोवर्धन स्वरूप श्रीकृष्ण को अर्पित करें। फिर गोवर्धन की जै-जैकार बोलकर 'गिरिराज धरण प्रभु तेरी शरण' कहते हुए कम-से-कम चार परिक्रमा करें। गोवर्धन पूजन उत्सव व्यक्तिगत अपने घर में या सभी लोग मिल करके एक जगह भी मना सकते हैं।

20. यमलोक की निवृत्ति के लिये कार्तिक शुक्ला दूज (यमद्वितीय, भईयादूज) को हो सके तो यमुना में स्नान करें। यदि ऐसा सम्भव न हो सके तो यमुना-यमुना उच्चारण करते हुए घर में स्नान करें। बहन को यमुना का रूप मानकर उनके हाथ का भोजन करें व बहन के लिये दान करें। इस दिन यमराज अपनी बहिन यमुना से मिलने के लिये मथुरा विश्राम घाट पर आये थे। इसलिये ये दिन भईया दूज व यमद्वितीया के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

21. कार्तिक शुक्ल अष्टमी को भगवान् श्रीकृष्ण प्रथम बार गौ चारण के लिये गोप (ग्वाला) बने थे। इसलिये इस दिन को गोप अष्टमी कहते हैं। इस दिन गायों की पूजा करके गौ ग्रास व चारे से उनकी सेवा व परिक्रमा करें। गौ के निमित्त कुछ-न-कुछ अवश्य दान करें। यदि गाय मिलना असम्भव है तो गौ माता के चित्र का ही पूजन करें। इस दिन गौ, गोविन्द, गोपाल इन तीन नामों की एक माला अवश्य जपें।

22. प्रबोधिनी एकादशी को प्रातः स्नानोपरान्त भगवान् को जगायें, फिर पंचामृत (गौ दुग्ध, दही, घी, शहद, शक्कर) से अभिषेक कर उत्तम नैवेद्य अर्पण करें। संध्या के समय घर के द्वारों व देहली के अन्दर-बाहर श्रीकृष्ण के चरण अंकित करें। रंगोली से आंगन व मुख्य द्वार के सम्मुख चौक पूरें। रात्रि को नृत्य गान कर भगवान् का जागरण

उत्सव मनायें। यदि रात्रि भर जागरण नहीं कर सकते तो बारह बजे तक करें। इस दिन नारायण स्वरूप श्रीकृष्ण क्षीरसागर में शयन कर उठते हैं, इसलिये इस एकादशी का नाम देवउठनी एकादशी पड़ा।

23. देवशयनी एकादशी व देवउठनी एकादशी तथा वैष्णवी दीक्षा के समय शंख, चक्र की छाप दोनों भुजाओं पर अवश्य धारण करनी चाहिये।

24. कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन चातुर्मास व्रत व मासोपवास व्रत की पूर्ण आहुति होती है। इस दिन प्रातः गुरु पूजन करके भगवान् की विशेष पूजा करें। वैष्णव व ब्राह्मणों को भी भोजन व दान- दक्षिणा से संतुष्ट करें। इस व्रत की समाप्ति पर व्रत करने वाले सभी वैष्णव एक साथ मिलकर भी प्रीति भोज कर सकते हैं।

25. प्रभु का स्मरण करते हुए प्रसाद ग्रहण कर व्रत का समापन करें।

इस प्रकार चातुर्मास व कार्तिक मासोपवास करने वाला साधक भगवद् धाम की प्राप्ति करता है।

**विशेषः –** रोग की स्थिति या स्त्रियों के मासिक धर्म काल में व्रतों के कृत्यों में यदि शिथिलता आ जाये तो कोई दोष नहीं, न ही व्रत खंडित माना जाता है। यदि भूलवश इस व्रत में कोई किसी प्रकार की भी त्रुटि रह जाये तो व्रत की समाप्ति पर इस कमी की पूर्ति के लिये श्रीहरि के नाम का संकीर्तन करें।

**मनवा नेक कह्यो ले मान।**
**काहे कल की बाट निहारे, आज भजो भगवान।।**
**बात नहीं कछु ऐसी मोपे, जो तुमकूँ नहिं ज्ञान।**
**भल अनभल सब कछु तू जानत, देत नहीं बस ध्यान।।**
**बीती बहुत रहि अब थोरी, चेत करो नादान।**
**करुणदास नहिं खबर निमिष की, कब निकसे तन प्रान।।**

# भक्त की रक्षा की जिम्मेदारी भगवान् पर होती है

**यह रहस्य रघुनाथ कर वेगि न जानइ कोई ।**
**जो जानइ रघुपति कृपा सपनेहु मोह न होई ।।**

श्री रघुनाथ का यह रहस्य(गुप्त मर्म) जल्दी कोई भी नहीं जान पाता। श्रीरघुनाथ जी की कृपा से जो इसको जान पाता है, उसे स्वप्न में भी मोह नहीं होता। इस दोहे में वर्णित यह कौन सा रहस्य है जिसको जानकर जीव को मोह नहीं होता? यह रहस्य है ज्ञान और भक्ति के अन्तर का रहस्य, जिसको जानकर जीव ज्ञान होने पर भी ज्ञान की चरमावस्था मुक्ति को त्यागकर भक्ति में मन लगाता है।

**अस विचारि हरि भगत सयाने । मुक्ति निरादर भगति लुभाने ।।**

बड़े-से-बड़े वैराग्यवान् धीर बुद्धि परम ज्ञानी पुरुष के पास जब माया अपना प्रभाव डालती है, उसको फँसाने के लिए छल-बल, दाँव-पेच से लालच देती है तो वे भी माया में फँस जाते हैं, कोई बिरला ही बच पाता है। लेकिन यही माया जब किसी शरणागत भक्त पर अपना प्रभाव डालना चाहती है तब भगवत् कृपा से भक्त बच जाता है। यही कारण है कि जब तपस्वी विश्वामित्र जी के पास माया ने मेनका के रूप में जाल फैलाया तो वे उसमें फँस गए। यद्यपि वे उस समय ज्ञान की चरमावस्था में पहुँचकर समाधि में लीन थे। इतने बड़े मुनि भी जब आँख खोलकर नारी रूपी माया को देखते हैं तो उसमें आसक्त हो जाते हैं। माया के बस होकर गान्धर्व विवाह कर लेते हैं। विवाह के बाद एक कन्या भी हो गई जिसका नाम शकुन्तला हुआ।

बाद में विश्वामित्र जी बहुत पछताए। फिर सब छोड़कर पहले से भी अधिक वैराग्य धारणकर साधनरत हो गए। कुछ सफलता भी मिली लेकिन अब की बार माया मेनका के रूप में नहीं बल्कि सफलता के अभिमान के रूप में आई। यह अभिमान आया कि लोग मुझे ब्रह्मर्षि कहें। एक वशिष्ठ जी को छोड़कर सभी ने विश्वामित्र जी को ब्रह्मर्षि स्वीकार भी कर लिया। एक अभिमानी को भला यह कैसे स्वीकार हो कि कोई उसकी प्रशंसा न करे। वशिष्ठ जी की यह बात मुनि को सहन नहीं

हुई। फिर माया क्रोध के रूप में आई। क्रोधावेश में मुनि अपनी बुद्धि का संतुलन खो बैठे। वशिष्ठ जी के सौ पुत्रों को एक-एक करके मुनि ने मरवा डाला। अब हिंसा के रूप में माया ने मुनि के मन में डेरा डाल लिया।

विश्वामित्र जी कभी राजा थे। सुखों की कोई कमी नहीं थी। सब कुछ त्यागकर साधना में लगे, तप, योग, ध्यान किया। अनेक ऋद्धि-सिद्धियों की प्राप्ति की। इतनी शक्तियाँ मुनि के पास आ गईं कि अयोध्या के महाराज त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेज दिया। देवताओं के द्वारा राजा त्रिशंकु को स्वर्ग से धकेल दिए जाने पर त्रिशंकु के लिए एक नया स्वर्ग बना दिया। यह सब कुछ हुआ लेकिन न माया को जीत सके और न ही भगवान् की प्राप्ति ही हुई। बाद में जब दीनता पूर्वक गुरु वशिष्ठ जी की शरण में गए तब गुरु कृपा से भक्ति हृदय में आई। फिर तो मुनि ऐसे शान्त स्वभाव के हुए कि यज्ञ में मारीच, सुभाहु, ताड़का आदि के विघ्न करने पर भी न ही उनको क्रोध आया और न ही कोई शाप दिया। अन्त में वात्सल्य भक्ति के प्रभाव से श्रीराम का साक्षात्कार किया। जब तक विश्वामित्र जी के हृदय में भक्ति नहीं आई, तब तक माया विघ्न डालती रही। लेकिन जब संत कृपा से हृदय में भक्ति आई तो माया अपने-आप पीठ मोड़कर चली गई। जिसके पास हरि भक्ति है, उससे माया डरती है।

**भगतिहि सानुकूल रघुराया, तातें जेहि डरपति अति माया।**
**तेहि बिलोकि माया सकुचाई, करि न सकत कछु निज प्रभुताई।**

श्रीरघुनाथ जी भक्ति के विशेष अनुकूल रहते हैं। इसी से माया भक्तों से अत्यन्त डरती है। उनको देखकर माया संकुचा जाती है। माया अपनी प्रभुता कुछ भी नहीं चला सकती। जब तक विश्वामित्र जी में भक्ति नहीं आई, तब तक भगवान् ने मुनि को माया के किसी भी विघ्न से नहीं बचाया। जब मुनि में भक्ति आई उसके बाद कोई विघ्न बाधा नहीं आई। ज्ञानी अपने बल पर चलता है लेकिन भक्त को पग-पग पर प्रभु का सहारा रहता है। इसलिए प्रभु भक्त की पग-पग पर संभाल करते हैं।

भगवान् कहते हैं कि मैं अपने भक्तों की ऐसे रक्षा करता हूँ जैसे माता अपने बालक की रक्षा करती है।

**जहाँ भगत मेरा पग धरे तहाँ धरू मैं हाथ ।**
**पीछे–पीछे मैं फिरूँ कबहुँ न छोड़ू साथ ।।**

विश्वामित्र जी की तरह एक बार माया देवर्षि नारद जी को भी अपने प्रभाव में लेकर नचाने लगी। विश्वमोहिनी के रूप में प्रकट होकर नारद जी को फँसाने के लिए जाल बिछाने लगी। परन्तु वह माया से बच निकले। यह कथा जगत् प्रसिद्ध है। स्वयं भगवान् ने भक्त नारद जी की रक्षा की वानर का मुख देकर व विश्वमोहिनी का हरण करके।

ज्ञानी विश्वामित्र को नहीं बचाया माया से पर भक्त श्रेष्ठ नारद जी को बचा लिया, क्यों? इसका उत्तर नारद जी के पूछने पर स्वयं भगवान् राम ने दिया। वह प्रसंग इस प्रकार है–

वनवास काल में सीताहरण के बाद एक दिन भगवान् सुन्दर वृक्ष की छाया में लक्ष्मण जी सहित सुखपूर्वक बैठे थे। फिर वहाँ समस्त देवता व मुनि आए। स्तुति करके अपने–अपने लोक को चले गए।

नारद जी ने सोचा सभी देव, मुनि, सिद्ध, योगी प्रभु के दर्शन करके चले गए। इस समय प्रभु के पास कोई भी नहीं है, अब अवसर है अपने मन की बात कहने का। इस समय प्रभु बहुत प्रसन्न दिख रहे हैं। ऐसा विचार कर नारद जी वीणा लेकर वहाँ गए जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे थे। विनती स्तुति करके कुशल क्षेम कहने–सुनने के बाद प्रभु को अति प्रसन्न जानकर नारद जी फिर कोमल वाणी से बोले–

**अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी, पुनि नारद बोले मृदुबानी ।**

हे प्रभु! जब मैं आपकी माया से विमोहित होकर विश्वमोहिनी को अंगीकार करना चाहता था, आपने मुझे किस कारण से विवाह नहीं करने दिया।

**तब विवाह मैं चाहहु कीन्हा, प्रभु केहि कारन करि न दीन्हा ।**

भगवान् श्रीराम जी बोले–'हे मुनि! सुनो। मैं तुम्हें हर्ष के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा, भरोसा छोड़कर मेरे आश्रित होकर केवल मुझको ही भजते हैं, ऐसे प्रेमी भक्तों की मैं सदा वैसे रखवाली करता हूँ जैसे माँ अपने बालक की रक्षा करती है। छोटा बच्चा दौड़कर जब आग

और साँप को पकड़ने लगता है, तो वहाँ माता उसे अलग कर देती है। परन्तु जब बालक सयाना हो जाता है, अपनी चिन्ता स्वयं करने लग जाता है, माता पर निर्भर न रहकर स्वयं पर निर्भर रहता है फिर माता उस बालक पर प्रेम तो रखती है परन्तु पहले वाली बात नहीं रहती।

**प्रौढ़ भए तेहि सुत पर माता। प्रीति करहीं नहीं पाछिली बाता ।।**
**मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी । बालक सुत सम दास अमानी ।।**

ज्ञानी मेरे प्रौढ़ अर्थात् बड़े पुत्र के समान हैं और नारद जी तुम्हारे जैसे अपने बल पर मान न करने वाले मेरे सेवक (भक्त) मेरे शिशु अर्थात् छोटे पुत्र के समान हैं। मेरे सेवक (भक्त) को केवल मेरा ही बल रहता है और ज्ञानी को अपना बल रहता है। पर माया का प्रहार तो दोनों पर ही होता है। भक्तों की रक्षा की जिम्मेदारी मुझ पर रहती है क्योंकि वे मेरे परायण होकर मेरा बल ही मानते हैं। परन्तु अपने बल पर विश्वास करने वाले ज्ञानी की रक्षा की जिम्मेदारी मुझ पर नहीं है। तब ही तो ऐसा विचार कर बुद्धिमान लोग मेरे प्रेमी संतों से यह रहस्य जानकर भक्तिपूर्वक मुझको भजते हैं। ज्ञान प्राप्त होने पर भी भक्ति को नहीं छोड़ते।

**अस विचारि पण्डित मोहि भजहीं । पायहुँ ज्ञान भगति नहीं तजहीं ।।**

सच्चा भक्त जो भी पुरुषार्थ करता है वह उसको प्रभु पर भरोसा करके करता है। सफलता नहीं मिली तो दुःखी नहीं होता बल्कि प्रभु इच्छा मानकर उस दुःख को स्वीकार कर संतुष्ट रहता है और यदि सफलता मिल गई तो अभिमान नहीं करता। अपने प्रभु की कृपा मानकर दीन बना रहता है। भक्त कभी किसी भी प्रकार का अभिमान नहीं करता क्योंकि भक्ति से उसका अहम् बिल्कुल समाप्त हो जाता है। भक्त कभी अहंकारी नहीं हो सकता और अहंकारी कभी भक्त नहीं हो सकता। निराभिमानी सच्चे भक्त की ही पग–पग पर प्रभु माया से रक्षा करते हैं। यदि हम माया में ही फँसे हैं और चारों तरफ से माया में ही घिरे हैं फिर भी हमको भगवान् माया से नहीं बचा रहे हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि हम अभी तक निराभिमानी सच्चे भक्त नहीं बने और न ही हमको प्रभु के बल का सहारा है जो भक्त को होता है। यदि आप भी माया से मुक्त होना

चाहते हो तो अभिमान को निःसंकोच होकर छोड़ो और दीन बनकर संतों का संग करके शीघ्राशीघ्र भक्ति को प्राप्त करो। तब जाकर भगवान् की कृपा से भव – बन्धन से मुक्त होकर उस शाश्वत सुख को प्राप्त करोगे।

भगवत् कृपा पर सबका समानाधिकार है। बस जरूरत है दीन बनकर संत शरण जाकर भक्ति प्राप्त करने की।

**भगति तात अनुपम सुख मूला । मिलहि जो होहिं संत अनुकूला ।।**

जब साधक संत के अनुकूल हो जाता है तो संत भी साधक के अनुकूल हो जाते हैं। संत की इसी अनुकूलता का नाम है कृपा जो दीन पर सहज बरस पड़ती है और वह कृपा लाभ करके चल पड़ता है अपने पथ पर। भक्ति के पथ में जो भी विघ्न बाधा आयेंगी उसको दूर करने की जिम्मेदारी होगी प्रभु पर। बस साधक तो निश्चिन्त होकर बढ़ता ही चला जाता है और अन्त में अपने लक्ष्य भगवत् प्रेम प्राप्त कर कृतार्थ हो जाता है।

**जे जन हरि जप चिंतन करहीं ।**
**आठों याम रहत हैं सँग सँग, वरद हस्त हरि सिर पर धरहीं ।।**
**इक पल विलग न होत कबहुँ प्रभु,ज्यों अलब्याई गाय बछरहीं ।**
**चाटति अमल करति बछरा कूँ, हरि ऐसे जन कलमष हरहीं ।।**
**पावन परम हृदय मन्दिर में, हर पल प्रियतम श्याम विचरहीं ।**
**इहाँ ऊहाँ सुख होत घनेरो, गो पद इव भव सागर तरहीं ।।**
**मणिधर कच्छप मणि अण्डन कूँ,ज्यौं रति रच्छा पोषण करहीं ।**
**करुण दास हरि जन त्यौं राखैं, आँधी हू महँ दीपक बरहीं ।।**

# सद्शिष्य और गुरुभक्ति

सद्शिष्य और गुरु में कोई अन्तर नहीं रहता। बाहर से दो दिखने पर भी भीतर से दोनों एक हो जाते हैं। दोनों ही सभी के लिये एक समान कल्याणकारी होते हैं। जिसमें गुरुभक्ति है वो एक दिन अवश्य गुरु कृपा का अधिकारी बनकर गुरु को पूर्णरूपेण हृदय में बसा लेता है। जो महिमा सद्गुरु की होती है वही महिमा गुरु भक्त सद्शिष्य की भी होती है। किसी गुरु भक्त सद्शिष्य से मित्रता करके देखिये। वह आपको धर्म के मार्ग पर ले जाएगा। गुरुभक्त का स्वभाव ही होता है, वह आपको धार्मिक बनाकर ही छोड़ेगा, नास्तिक नहीं रहने देगा। सच्चा गुरुभक्त मिल जाये तो आपके लिये अध्यात्म का मार्ग खुल जाएगा।

सच्चा गुरुभक्त ही संतत्व को प्राप्त कर सच्चा संत होता है। केवल संतों का भेष बनाने व रटी-रटाई बातें बोलने वाले कभी संतत्व को प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि गुरु भक्ति के बिना भगवद् भक्ति असंभव है। जिसमें गुरु भक्ति नहीं उसमें भगवद् भक्ति नहीं आ सकती।

स्वामी विवेकानन्द जी की गुरुभक्ति व मस्ती को देखकर एक विद्वान पंडित जी ने गद्गद कंठ होकर स्वामी जी से कहा- 'गाड़ी भरी जा सके मैंने इतने ग्रन्थों का अध्ययन किया है पर आज जाना कि मैंने तो व्यर्थ ही भार उठाया हुआ है। गुरु कृपा प्रसाद अमृत का स्वाद तो आप ले रहे हैं। हम तो मस्तिष्क में किताबों के कोरे ज्ञान का बोझ ढो रहे हैं।'

पुस्तकें पढ़-पढ़के गुरु बन जाने में कोई सार नहीं है। ऐसे किताबी गुरु बिना गुरु भक्ति के, सद्शिष्य बने बिना गुरु बनकर अपना ही परलोक बिगाड़ रहे हैं।

सद्शिष्य के संग से सद्शिष्य बनने की पात्रता आएगी। इसके बाद ही गुरु भक्ति के द्वारा हम गुरु कृपा को प्राप्त कर सकते हैं। गुरु कृपा प्राप्त किये बिना भक्ति पंथ अति दूर है। सद्गुरु दुर्लभ नहीं है, सद्शिष्य दुर्लभ है। अपने आपको सद्शिष्य बना लो, सद्गुरु कृपा स्वतः प्राप्त हो जाएगी।

जब कोई गुरुभक्त आपका हाथ पकड़ ले तो निश्चित जानिये कि आपके लिये मोक्ष का द्वार खुल गया है। सद्शिष्य का सान्निध्य

जितना लाभ पहुँचाता है उतना लाभ तो बड़े-बड़े व्याख्यान, प्रवचन सुनकर भी नहीं होता। सद्शिष्यों की गाथाएँ सुनने व उनका सत्संग करने से जितना पुण्य लाभ व पापों का क्षय होता है उतना तो गंगा स्नान से भी नहीं होता। सद्शिष्यों की गुरु भक्ति की कथाएँ हमें जैसा भक्ति, ज्ञान का अमृत पिला सकती हैं वैसा अमृत पिलाने की शक्ति स्वर्ग के अमृत में भी नहीं है।

गुरुभक्ति के आगे सारी योग्यताएँ तुच्छ हो जाती हैं। आदिगुरु श्रीशंकराचार्य जी गुरु अष्टक में कहते हैं-

**षंडगादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति ।**
**मनश्चेन्न जग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ।।**

वेद एवं षट्वेदांग आदि शास्त्र जिन्हें कंठस्थ हैं, जिनमें सुन्दर कविता रचने की प्रतिभा हो, किन्तु उनका मन यदि गुरु चरणों में आसक्त (गुरु भक्ति) न हो तो इन सद्गुणों से क्या लाभ?

**विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः सदाचारवृत्तेषु मत्तो न चान्यः ।**
**मनश्चेन्न जग्नं गुरोरघ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।**

जिन्हें विदेशों में आदर मिलता हो, स्वदेश में भी जिनका नित्य जय-जयकारों से स्वागत किया जाता हो और जो सदाचार पालन में भी प्रथम स्थान रखता हो, यदि उनके भी मन में गुरु चरणों की लगन न हो तो इन सब सद्गुणों से क्या लाभ?

श्री जनार्दन स्वामी के शिष्य एकनाथ ने गुरु भक्ति में हँसते-हँसते और गुरु प्रेम में रोते- रोते जो प्राप्त किया वह बड़े-बड़े योगी भी नहीं पा सके। गुरुभक्ति द्वारा संत एकनाथ जी का परम पावन हृदय भगवान् का प्रत्यक्ष मन्दिर बन गया। इन्हीं संत एकनाथ जी के आश्रम में एक विधवा स्त्री का पुत्र रहता था। वह पूरणपूड़ी खाने का इतना शौकीन था कि लोगों ने उसका नाम पूरणपूड़ा ही रख दिया। लोग उसका वास्तविक नाम ही भूल गये, उसे पूरणपूड़ा नाम से ही पुकारने लगे। वह पढ़ा-लिखा नहीं था। परन्तु गुरुभक्ति उसके रोम-रोम में बसी थी। सेवा व श्रद्धा के बल से वह गुरु कृपा का अधिकारी बन गया।

संत एकनाथ जी के आश्रम में बहुत वैभव था। धन-सम्पत्ति की

कोई कमी नहीं थी। उनका पुत्र काशी पढ़कर आ चुका था, बहुत विद्वान था। संत एकनाथ जी उन दिनों कोई ग्रन्थ लिख रहे थे। अपने शरीर की हालत देखकर उन्होंने अपने शिष्यों से कहा – 'इस ग्रन्थ को मैं यदि पूरा न लिख सकूँ, बीच में ही मेरा शरीर छूट जाये तो मेरे पुत्र को यह ग्रन्थ पूरा करने के लिये दे देना। परंतु मुझे आशा नहीं है कि वह इसे पूरा कर सकेगा। कारण कि वह मुझे पिता समझता है, गुरु नहीं मानता। शास्त्री हो गया है, विद्वान् है लेकिन इससे उसकी बुद्धि की गुत्थियाँ सुलझने की बजाय उलझी ही हैं। वह मेरी कृपा प्राप्त नहीं कर सका। शायद वह मेरा ग्रन्थ पूरा करने में समर्थ नहीं है। फिर भी उसको यह ग्रन्थ देकर पूर्ण करने के लिये कहना। जब बात उसके वश से बाहर हो जाए तब पूरणपूड़ा को ग्रन्थ पूरा करने के लिये दे देना।'

एकनाथ जी के शिष्य यह सुनकर दंग रह गये और बोले – 'गुरुजी! यह आप क्या कह रहे हैं। उसे चावल, दाल, रोटी, खिचड़ी आदि नहीं भाते, हलवा तक अच्छा नहीं लगता। प्रतिदिन केवल पूरणपूड़ी ही खाता है। पढ़ा – लिखा भी नहीं है, तब वह बुद्धू इस ग्रन्थ को किस प्रकार पूरा करेगा।'

संत एकनाथ जी ने कहा – 'अन्य सभी विषयों में वह बुद्धू है, तुम सब शिष्यों से पीछे है। परन्तु गुरुभक्ति में वह सर्वप्रथम है। गुरुभक्ति के आगे समस्त योग्यताएँ पीछे रह जाती हैं। भले ही वह पढ़ने में अँगूठा छाप हो परन्तु कृपा को सम्भालने की शक्ति वह प्राप्त कर चुका है। कृपा प्राप्ति के लिये उसके हृदय के द्वार खुल चुके हैं। गुरु आज्ञा का वह पूरी तरह पालन करता है। प्रसाद में फल के छिलके, गुठली तक को वह बाहर नहीं फेंकता। गुरु की ओर से उसके पास जो भी कुछ आता है वह अमृत सदृश्य हो जाता है। गुरुभक्ति उसे इतना अधिक पवित्र बना चुकी है कि वह ग्रन्थ पूरा करने की योग्यता रखता है।'

सुनकर समस्त शिष्यों के सिर झुक गये। वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। पूरणपूड़ा, विधवा स्त्री का वह पुत्र जो पूरणपूड़ी खाने के शौंक में अपनी बेढंगी आदत के कारण अपना नाम तक खो बैठा था, गुरुभक्ति के कारण महान् विद्वान हो गया। गुरुभक्ति में सभी बेढंगी आदतें दब

गई। सद्‌गुरु के प्रेम की धारा में उसका समस्त अज्ञान समाप्त हो गया। आखिर में वह ग्रन्थ उसी ने पूरा किया। ऐसे कितने ही अनपढ़ शिष्य तर गये। अनेकों गुरुभक्त शिष्य तर गये और विद्वान गुरु भाई देखते ही रह गये।

ऐसे ही आदिगुरु श्रीशंकराचार्य जी का एक अनपढ़ शिष्य तोटक जो बिल्कुल बुद्धू था, जो गायत्री मन्त्र तक याद नहीं कर पा रहा था, सब गुरुभाई उसकी हँसी उड़ाया करते थे। एक बार शंकराचार्य जी तोटक की प्रतीक्षा कर रहे थे कि वह आए तो पाठ आरम्भ करें। उनके विद्वान शिष्यों ने कहा– 'गुरु जी! वह तो कुछ याद नहीं रख सकता। उसकी राह क्या देखनी। आप तो हमें पढ़ाईये।'

शंकराचार्य जी ने कहा– 'भले ही वह लौकिक बुद्धि में बुद्धू है परन्तु श्रद्धा, विश्वास, प्रेम व निष्ठा में तुम सबसे आगे है। उसमें गुरु भक्ति कूट–कूटकर भरी है। तुम्हें वह बुद्धू दिखाई देता है पागलों....।' इतने में अचानक तोटक आया और गुरु जी को दण्डवत् प्रणाम करके पीछे बैठने के लिये खड़ा हुआ। उसको देखकर श्रीशंकराचार्य जी रीझ गये और बोले– 'जो आज तक पढ़ाया उसको सुनाओ।' यह सुनकर नीचे बैठे समस्त शिष्य अपनी हँसी न रोक सके। गुरुभक्ति के प्रताप से तोटक ने वह तो सुनाया ही जो सुनाया था जो आगे पढ़ाया जायेगा उसको भी सुनाने लगा। यह गुरु कृपा का चमत्कार है।

गुरु कृपा का ऐसा चमत्कार सभी शिष्य चाहते हैं लेकिन सद्‌शिष्य कोई बनना नहीं चाहता। इसलिये ऐसे कर्महीन, अश्रद्धालु, संशयात्मा शिष्य कभी सद्‌गुरु कृपा को प्राप्त नहीं कर सकते। हम श्रीरामकृष्ण परमहंस, एकनाथ जी व शंकराचार्य जी जैसे गुरु तो चाहते हैं लेकिन विवेकानन्द जी, पूरणपूड़ा व तोटक जैसे सद्‌शिष्य नहीं बनना चाहते। गुरुभक्ति के बिना ढोल में पोल है जो बोलेगा तो बहुत लेकिन भीतर से खाली ही रहेगा।

# भीड़ और भार

भजन तो संत संग करने वाले सभी सज्जन करना चाहते हैं; करने की कोशिश भी करते हैं लेकिन उनका प्रयत्न सफल नहीं हो पाता। उत्तर में सभी यही कहते सुने जाते हैं कि 'महाराज! मन बहुत चंचल है। क्या करें? भजन में मन लगाना हमारे बस से बाहर की बात है।'

भजन चिंतन करने से पहले भजन चिंतन विरोधी तत्त्व को जान लेना बहुत जरूरी है। विरोधी तत्त्व को जाने बिना हम इसके विघ्नों से बच नहीं सकते, बचे बिना प्रयास विफल हो जाता है। भजन चिन्तन का सबसे बड़ा विरोधी तत्त्व है भीर और भार।

भीर का अर्थ है व्यक्ति व वस्तु की बाहुल्यता। व्यक्तियों की जितनी अधिक भीड़ होगी उतना ही अधिक कोलाहल होगा, अशान्ति होगी क्योंकि सबके मन व विचार एक से नहीं होते, परस्पर विचार टकराते हैं। विचारों की भिन्नता स्वाभाविक ही है, इसमें किसी का दोष नहीं होता है। अपने विचारों को दूसरों पर थोपना व दूसरे के विचारों का विरोध करना भी स्वाभाविक ही है। इसलिये जहाँ भीड़ है वहाँ टकराव अशान्ति तो होती ही है। जितनी अधिक भीड़ उतना ही अधिक कोलाहल।

भीड़ केवल व्यक्तियों की ही नहीं वस्तुओं की भी होती है। आजकल लोगों को व्यक्तियों की भीड़ से परहेज होने लगा है। अपने घर पर एक या दो संतानों से ज्यादा नहीं चाहते। व्यक्तियों की भीड़ से तो सब बचना चाहते हैं लेकिन वस्तुओं की भीड़ इकट्ठी करते हैं। घर में हर व्यक्ति के पास कई-कई मोबाइल, हर कमरे में टीवी, गाड़ी मोटर-साईकिल जरूरत न होने पर भी कई-कई रखते हैं। जो भी वस्तु बाजार में आती है चाहे उसकी आवश्यकता न भी हो, घर में ले आने के लिये व्याकुल हो जाते हैं। घर में अनावश्यक वस्तुओं की भरमार, कपड़े जूतों की भरमार। कपड़े सँभालने के लिये अलमारियाँ भी कम पड़ जाती है, समान इतना कि घर भी छोटा लगने लगा। घर में चाहे खाने के लाले पड़े हों, घर में चाहे गाड़ी खड़ी करने के लिये जगह न भी हो तो भी गाड़ी,

मोटरसाईकिल जरूर खरीदेंगे। इसके लिए चाहे लोन या किसी से ब्याज पर ही पैसा क्यों न लेना पड़े।

घर में इलैक्ट्रिक उपकरणों की इतनी भीड़ हैं कि हर रोज कोई न कोई उपकरण ठीक कराने के लिए बाजाार जाना ही पड़ता है। कभी वाशिंग मशीन, कभी फ्रिज, कभी पंखा, कभी मिक्सी, कभी जूसर, कभी ए०सी०, कभी टी०वी०, कभी मोबाइल, कभी गाड़ी, कभी मोटर साईकिल, कभी ओवन, कभी कम्पयूटर, कभी गीज़र, कभी हीटर ओर भी न जाने कितने उपकरण घर में सिरदर्द बनकर घर व जेब पर कब्जा जमाये बैठे हैं। पुराने जमाने में लोग रोटी के लिये कमाते थे और आज रोटी पर इतना खर्च नहीं होता जितना इन उपकरणों को खरीदने व सँभालने में खर्च हो रहा है। यही भीड़ हमारे लिये भार बन चुकी है। इस भीड़ और भार ने तो हमारी रविवार की छुट्टी पर भी कब्जा कर लिया है। रविवार को भी हम चैन से नहीं बैठ सकते। भजन चिंतन करने की बात तो हम सोच भी नहीं पाते, करना तो दूर की बात है।

भीड़ चाहे व्यक्तियों की हो चाहे वस्तुओं की दोनों मन को चंचल व अशान्त बनाकर अपने में उलझाये रखती है। इस भीड़ के होते भजन चिंतन असंभव तो नहीं अति कठिन तो है ही।

भजन चिंतन का दूसरा विरोधी तत्त्व है भार। भार का सीधा सा अर्थ है भीड़ को अपना व अपने लिये मानकर उसी की चिंता करते रहना। यह मानसिक भार है। इस भार से मन भारी रहता है हल्का-फुल्का नहीं रह सकता। चाहे व्यक्ति का भार हो, चाहे वस्तु का, या फिर काम का भार हो, भार तो भार ही है। भीड़ का सम्बन्ध तन से और भार का सम्बन्ध मन से है। भार के होते मन भजन चिंतन नहीं कर पाता। भार की चिंता ही नहीं हटती फिर चिंतन कैसे हो? भजन चिंतन यदि कोई सज्जन करना चाहे तो भीड़ व भार दोनों से दूरी बनानी ही पड़ेगी। नहीं तो भीड़ और भार दोनों भजन में अवरोध पैदा करते रहेंगे।

**भीर भार हरि भजन में, विघ्न करहिं बहु भाँति।**
**इन दोऊन कूँ छॉड़ि करि, भजन करहुँ दिन राति ।।**

**भावार्थ-**भीड़ और भार दोनों अनेक प्रकार से भजन में विघ्न करते हैं। इसलिए इन दोनों से कुछ दूरी बनाकर दिन-रात जब भी समय मिले भजन चिंतन करते रहना चाहिये।

**जे चाहत हरि पावनौ, भीर भार दे त्याग ।**
**सहजहिं सुमिरन होयगो,करि अभ्यास विराग ।।**

**भावार्थ-**यदि प्रभु को प्राप्त करना चाहते हो तो भीर से दूर व मन से भार उतार कर वैराग्यपूर्वक भजन चिंतन का अभ्यास करते रहना चाहिए। कुछ समय बाद भजन-चिंतन सहज ही होने लगेगा।

**जा मग भीर अपार हो, सिर पे भार विशेष ।**
**केहि विधि पहुँचे लछि पै, पावै दुःख कलेश ।।**

**भावार्थ-**आप स्वयं सोचो जिस मार्ग में बहुत भीड़ हो और सिर पर भारी भार हो, वह किस प्रकार अपने लक्ष्य पर पहुँच पायेगा, वह तो केवल दुःख क्लेश ही पायेगा।

**भीर पीर सम जानि लै, भार भ ार सम जान ।**
**तजि एकान्त निवास करि,भज लै श्रीभगवान् ।।**

**भावार्थ-**भीड़ को प्रकट दुःख और भार को भाड़ अर्थात् धधकती भट्ठी के समान जानो। जलन के सिवा इसमें ओर है ही क्या? भीड़ व भार से अलग हटकर नित्यप्रति कुछ समय ऐकांत बैठकर, भजन चिंतन का अभ्यास करना चाहिए।

**तप्त रेत मग भीर है, भार दुपहरी धूप ।**
**भक्ति ज्ञान की राह में ,चल न सकै नर भूप ।।**

**भावार्थ-**भीड़ तप्ती रेत के समान है जो पाँव में छाले डालकर आगे बढ़ने से रोकती देगी व भार दोपहर की कड़कती धूप है जो बेचैन कर देगी, थका देगी। इस भीड़ व भार के होते चाहे भक्ति की राह हो या ज्ञान की, साधारण मनुष्य की कौन कहे विशेष कर्मठ नर श्रेष्ठ भी नहीं चल पाते।

**भीर तेज सरि धार है ,भार चुड़ाई पाट ।**
**दोऊनमें कोऊ एक की,नहीं किसीपे काट ।।**

**भावार्थ**-भीड़ नदी की तेज धारा के समान है और भार नदी के चौड़े पाट की तरह है। इन दोनों में से किसी एक के होते हुए भी कोई नदी को तैरकर पार नहीं कर सकता। इन दोनों समस्याओं में से किसी एक का भी समाधान नहीं है। इसलिए दूर हटकर रास्ता बदलना ही समझदारी है।

**भीर भार सौं दूर अति, मिले भजन को देश ।**
**मैं अरु हरि के बीच में, रहै न कछु भी लेश ।।**

**भावार्थ**-भजन चिंतन करने का स्थान तो भीड़ व भार से दूर ही मिलता है। जहाँ अपने व प्रभु के बीच में कोई दूसरा न हो।

**पढ़ीसुनी नहिं बात है,अनुभवकी कहुँ साँच ।**
**भीरभार बिन भजनमें,लगै न दूसरि आँच ।।**

**भावार्थ**-मैं पढ़ी पढ़ाई या सुनी सुनाई बात नहीं कर रहा हूँ, अपने अनुभव से सच कह रहा हूँ । भीड़ व भार के सिवा भजन में कोई ओर दूसरा विघ्न नहीं है।

**भीरअनल परचण्डअति,भार तेल सम जानि ।**
**दूहुँन के संयोग सौं, होत भजन की हानि ।।**

**भावार्थ**-भीड़ तो अति प्रज्ज्वलित अग्नि व भार तेल के समान है। यदि इन दोनों का संयोग होता रहा तो पहली बात तो भजन चिंतन होगा ही नहीं, यदि थोड़ा बहुत हो भी गया तो वह टिकेगा नहीं। भीड़ की आहुति चढ़ जायेगा।

**माया कर असि भीर है ,लगी भार की धारि ।**
**भक्ति भजनकी राहमें,बीचहिं लीन्हेमारि ।।**

**भावार्थ**-माया के हाथ में भीड़ रूपी तलवार है। भार ही जिसकी तेज धार है। भजन करने वाले को बीच में ही यह मार डालती है। इसलिए इससे बचके भजन करो।

**जन वस्तु की बाहुलता, याकौ कहते भीर ।**
**अपनोपन मन भार है, बँध्यौ राग जंजीर ।।**

**भावार्थ**-व्यक्ति व वस्तु की बाहुल्यता को ही भीड़ कहते हैं।

इन दोनों के प्रति अपनेपन का भाव ही मन का भार है। भीड़ का सम्बन्ध शरीर से व भार का सम्बन्ध मन से है। यह भीड़ व भार राग अर्थात् आसक्ति की जंजीर द्वारा मन व तन से बंधा है।

**सत्सँगको नित बल मिलै, दृढ़ चित नित अभ्यास ।**
**करूणदास या विघ्न सों, तब छूटन की आस ।।**

**भावार्थ-**यदि नित प्रति सत्संग का संबल मिलता रहे और साधक दृढ़ चित्त से दृढ़ निश्चय पूर्वक भजन-साधन का अभ्यास करे तब जाकर इस भीड़ व भार के विघ्न से छूटने की आशा की जा सकती है।

सत्संग और दृढ़ पुरूषार्थ ही इस समस्या का समाधान है।

**भाग दौड़ ले चाहे जितना, अंत पड़ेगा खाट पे।**
**दो पाँवों पे चलते चलते, अंत चलेगा आठ पे।**
**धन दौलत सम्मान घनेरा, क्यों इतराता ठाट पे।**
**छोड़ सकल वैभव जायेगा, चिता लगेगी घाट पे।**
**रोगों का घर बना बुढ़ापा, फिर भी बैठे हाट पे।**
**छोड़ भजन तू श्वाँस लुटाये, धन ग्राहक की बाट पे।**
**घर बाहर की चिंता करता, ध्यान न पूजा पाठ पे।**
**करुण दास उस दिन की सोचो,शव लेटे जब काठ पे।**

# लुटने से बचें

इतने चालाक भी मत बनो कि दूसरों को लूटने लग जाओ और इतने भोले भी मत बनो कि कोई हमें ही लूट ले जाए। प्रायः देखने में आया है कि लोग लोभ में फँसकर बुद्धि की चतुराई भूलकर बिल्कुल भोले बन जाते हैं और जब लुट जाते हैं तो फिर अहसास होता है कि लोभ में हमारी मति मारी गई थी।

अभी कुछ दिन पहले दैनिक जागरण समाचार पत्र में खबर छपी थी। कहीं से एक मथुरा के सज्जन के पास फोन आया कि आपका नाम लक्की ड्रा में निकला है। आपने पाँच लाख का इनाम जीता है। इस इनाम को पाने के लिए पहले आपको दस हजार रूपए हमारे खाते में डालने होंगे। वह सज्जन लोभ में आ गया, उसने दस हजार रूपए उनके खाते में डाल दिए। फिर कुछ दिन बाद उसके पास फोन आया कि दस हजार ओर डालने होंगे। अबकी बार उसको शंका हो गई कि कहीं मेरे साथ धोखा तो नहीं हो रहा है। बाद में छान–बीन करने के बाद पता चला कि वह केवल एक धोखा था। पुलिस भी इसका पता न लगा सकी।

ऐसे ही एक सज्जन के पास फोन आया कि आपका लक्की ड्रा निकला है। आप दो महीने तक कहीं भी फ्री काल कर सकते हैं। उस सज्जन ने बताए अनुसार खूब फोन किए, जितने वो कर सकता था। बाद में बिल आया तो देख कर हैरान हो गया कि मेरे साथ धोखा हुआ है।

अभी डेढ़ महीना पहले हमारे पास यमुनानगर से श्री ..... का फोन आया। उसने बताया कि मेरे पास फोन आया कि आपका 25 लाख का इनाम निकला है। इनाम पाने के लिए आपको बारह हजार रूपए देने होंगे। मैंने कहा सोचकर बताएँगें। उसने अपना कोन्टेक्ट नम्बर भी दिया है, अब मैं क्या करुँ? ऐसे ही एक किसान के पास कुछ लोग आकर बोले कि आपके खेत में कम्पनी का टावर लगाने के लिए थोड़ी भूमि चहिए। इससे आपको हर महीना पचास हजार रूपए व घर के एक सदस्य को नौकरी भी दी जाएगी। किसान ने लोभ में आकर हाँ कर दी। तब उन लोगों ने कहा कि इसके लिए पहले आपको चालीस हजार रुपए जमा कराने होंगे। किसान ने ऐसा ही किया। बाद में पता चला कि वो किसी

कम्पनी से नहीं थे, फर्जी कागज बनवा रखे थे। फिर वो लोग कभी नहीं आए।

मोबाइल पर भी मैसज आते रहते हैं। आपका इनाम निकला है, इतने पैसे जमा करवाएँ। और भी बहुत तरीके लोगों ने ठगने के निकाल रखे हैं। लोभ में आकर बहुत लोग अपने को धोखे में डाल रहे हैं, फिर बाद में पछताते रहते हैं।

घर से बाहर जाओ तो यात्रा में किसी अपरिचित से चाहे कितनी भी जान–पहचान हो जाए, तब भी उससे सावधान रहो। उसके साथ कुछ भी मत खाओ। आजकल ऐसी बहुत घटनाएँ हो रही हैं, नशीली वस्तु खिलाकर लूट लिया जाता है। आजकल एक घटना समाचार पत्रों में प्रायः करके पढ़ने को मिलती है और वह है नकली सोने की ईंट का व्यापार जो कि खूब चल रहा है। लुटेरे किसी भी यात्री से कहते हैं कि हमारे पुराने घर की खुदाई में सोने की ईंट निकली है। यहाँ तो हम अपने शहर में पुलिस के डर से नहीं बेच सकते, आप सस्ते में ईंट खरीद लो। यात्री लोभ में आकर लेने को तैयार हो जाते हैं। फिर वो घर जाकर पैसे ले आते हैं लेकिन बाद में पता चलता है कि अन्दर से ईंट सोने की नहीं होती, केवल बाहर का आवरण ही सोने का होता है।

बाहर की कौन कहे, घर में भी माताएँ सोना ना पहने। कई ठग बिजली का मीटर चैक करने के बहाने घर में आते हैं। अकेली औरत को देखकर लूट ले जाते हैं। कई बार कुछ बेचने के बहाने से ठग महिलाएँ घर में आ जाती हैं। कुछ सुंघाकर बेहोश करके सब कुछ लूट ले जाती हैं।

जब घर में कोई माता अकेली हो तो किसी भी अपरिचित के लिए द्वार न खोलें। भिखारी को या किसी अपरिचित बाबा को भी घर के भीतर न आने दें। गले की चैन का लुटना तो आम बात हो गई है। इसलिए सोने की चैन न पहनो नहीं तो बेचैन हो जाओगे। कई माताएँ सोचती हैं कि चैन तो टूट जाती है लेकिन हाथों में सोने के कड़े या चूड़ियाँ पहनने में क्या डर है। फगवाड़ा (पंजाब) में एक माता की बीच बाजार, दिन–दहाड़े सोने की चूड़ियाँ लुट गईं।

तीन वर्ष पूर्व एक दुकानदार को कुछ लोग यह कहकर अपनी

गाड़ी से कुरुक्षेत्र की तरफ ले गए कि आपकी दुकान का माल होटल में जाना है। एक बार चलकर सैटिंग देख लीजिए। रास्ते में जूस में कुछ डालकर उस दुकानदार को पिला दिया जिससे वह बेहोश हो गया। उसकी चैन, अंगुठी, मोबाइल व नगदी लूट ली। बाद में घर वालों को वह जी.टी रोड के किनारे किसी होटल में बेहोश मिला। तीन दिन बाद होश आया। ऐसे ही चण्डीगढ़ ट्रिब्यून चौंक पर एक प्राइवेट गाड़ी दिल्ली जाने के लिए खड़ी थी। आभूषणों से भूषित एक महिला जिसके साथ उसके पति हाथ में अटैची लिए खड़ा था जो दिल्ली जाने के लिए बस की इंतजार कर रहे थे। उनके पास जाकर गाड़ी का ड्राइवर बोला – 'मुझे दिल्ली किसी काम से जाना है। गाड़ी खाली जा रही है। दोनों के केवल तीन सौ रुपए लगेंगे। दोनों पति – पत्नी सस्ता किराया व आराम के लोभ से बैठ गए। रास्ता में अम्बाला से पहले ठग के ओर साथी पहले से ही इंतजार में खड़े थे। उनके हाथ देते ही गाड़ी रोक ली गई। फिर क्या था, बेचारे लुट गए।

अभी कुछ दिन पहले गोवर्धन आश्रम में किसी ठग का फोन आया कि मैं चण्डीगढ़ से बोल रहा हूँ। हमारी माता आश्रम में 5 लाख रूपये दान करना चाहती हैं। आठ – दस दिन में मैं अपनी माता के साथ आ रहा हूँ।

इसके दो दिन बाद फिर फोन आया कि कोसी के पास हमारे ड्राईवर का Accident हो गया है। हम चण्डीगढ़ से इतनी जल्दी कोसी नहीं पहुँच सकते। कृपया चालीस हजार रूपये कोसी ....... पहुँचा दें। शाम तक हम पाँच लाख रूपये लेकर आश्रम में पहुँच जायेंगे। उनकी भाषा बोली से हम समझ गये कि ये झूठ बोल रहे हैं क्योंकि उनकी भाषा में पंजाबी लहजा नहीं था। न हमने किसी को पैसे लेकर भेजा और न ही आज तक उनका कोई फोन आया। हम ठगे जाने से बच गये।

घर हो या बाहर किसी भी अपरिचित से सावधान रहो। न किसी को लूटो और न ही किसी से लुटो। सबसे प्रार्थना है कि वो अधिक सोना पहनकर ठगों व लुटेरों को निमन्त्रण न दें व लोभ में फँसकर किसी के भुलावे में न आएँ।

# विवाह के लिए जन्मकुण्डली मिलान कहाँ तक उचित?

सनातन धर्म में बहुत सी ऐसी बातें लोगों में प्रचलित हो गई जिनका कोई शास्त्रीय आधार नहीं है। सभी लोगों से मैं प्रार्थना करता हूँ कि कोई भी ऐसे रीति रिवाज को न अपनाएँ जिसका कोई शास्त्रीय प्रमाण न हो। वैसे तो ऐसी बहुत सी बातें हैं लेकिन मैं आज उस बात की चर्चा करने जा रहा हूँ जिसके कारण लोगों को बहुत परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। वो है 'विवाह से पहले लड़की-लड़के की जन्मकुण्डली का मिलान।' यह शास्त्र सम्मत नहीं है। पता नहीं यह कुप्रथा कहाँ से और कैसे आ गई?

आप लोग गीता, रामायण, भागवत, शिवपुराण व महाभारत में बहुत सी कथाएँ पढ़ व सुन चुके होंगे। उनमें शिव-सती, शिव-पार्वती, लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम व श्रीकृष्ण के सौलह हजार एक सौ आठ विवाहों की कथाएँ आप लोगों ने सुनी होंगी। क्या कभी सुना है कि इन सबकी जोड़ी मिलाने से पहले जन्मकुण्डलियाँ मिलाई गयीं? उत्तर में आप कह सकते हैं कि ये तो भगवान् हैं, इनकी जन्मकुण्डली मिलाने की आवश्यकता नहीं होती। जन्मकुण्डली तो इन्सानों की होती है। मैं आप लोगों से पूछता हूँ कि सतयुग, त्रेता व द्वापर युग की कथाओं में क्या पढ़ा या सुना है कि महाराज दशरथ की जन्मकुण्डली कौशल्या, सुमित्रा व कैकेई की कुण्डली के साथ मिलाने पर ही विवाह हुआ हो?

नन्द यशोदा, वसुदेव-देवकी, कश्यप- अदिति, सत्यावान-सावत्री, नल-दमयन्ती व अर्जुन -द्रौपदी ऐसे न जाने कितने विवाहों की चर्चा है ग्रन्थों में। क्या इनमें से किसी की जन्म कुण्डली मिलाने की चर्चा हुई है किसी ग्रन्थ में? क्या किसी भी स्वयंवर में जन्मकुण्डली मिलान की शर्त रखी गई थी? मुसलिम व ईसाई धर्म में क्या कोई जन्मकुण्डली मिलाता है? सिख समुदाय में भी क्या जन्मकुण्डलियाँ मिलाते हुए सुना है? क्या जिनकी कुण्डलियाँ मिलाई जाती हैं, उनके तलाक नहीं होते? फिर हम क्यों इस भ्रम जाल में पड़कर अच्छे-अच्छे रिश्ते ठुकरा देते हैं? पहले तो अनुकूल रिश्ता ही नहीं मिलता। यदि बहुत खोजने पर मिल भी जाए तब कुण्डली मिलान के चक्कर में पड़कर उसको छोड़ देते हैं।

भगवती पार्वती जी के विवाह के सम्बन्ध में माता मैना का कथन है -

**जो घर वर कुल होई अनूपा। करिअ विवाह सुता अनुरूपा ।।**

प्रस्तुत चौपाई में बताया कि लड़की के लिए लड़का देखना है तो तीन ही बातों का मिलान करना चाहिए न कि जन्मकुण्डली का। वो तीन बाते हैं घर, वर और कुल। यदि लड़की के अनुरूप घर हो, वर हो व कुल -खानदान हो तो विवाह कर देना चाहिए। इसके सिवा ओर भी कितने शास्त्र के उदाहरण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि कुण्डली मिलान शास्त्र सम्मत नहीं है। हमने जन्मकुण्डली मिलान को जितना महत्त्व दे रखा है, यदि इसका इतना महत्त्व होता तो पुराणों में विवाह प्रसंग में इसकी कहीं -न-कहीं अवश्य चर्चा होती लेकिन ऐसी चर्चा कहीं नहीं है। योग, लग्न, ग्रह, वार, तिथि आदि के सम्बन्ध में जो शास्त्र में लिखा हुआ है वह केवल विवाह आदि शुभ कार्यों के शुभ मुहूर्त्त के लिए लिखा हुआ है न कि कुण्डली मिलान के बारे में।

इसलिए यह प्रथा जितनी जल्दी हो सके मिटा देनी चाहिए नहीं तो यह प्रथा आपकी आने वाली पीड़ियों पर बहुत भारी पड़ जाएगी क्योंकि यह कुप्रथा अभी नई आई है। अभी इसकी जड़ें गहरी नहीं हुई। आप स्वयं भी देख सकते हैं क्या आपके दादा-परदादा की जन्मकुण्डलियाँ मिलाई गई थीं? शायद आपके माता-पिता की भी नहीं मिलाई गई हों। ग्रामीण क्षेत्रों में तो आज से पच्चीस-तीस वर्ष पहले कोई जन्मपत्रियाँ बनवाता ही नहीं था। आप ही बताओ कि पहले तलाक होते थे कि आजकल? तीस वर्ष पहले जब मैं घर पर था, हमने कभी कुण्डली मिलान के बारे में सुना भी नहीं था। बिना कुण्डली मिलान के ही विवाह होते थे और यह रिश्ता जीवन भर निभता था। लेकिन आजकल ऐसा नहीं होता। इसलिए 'सेवा सुख' पत्रिका के सभी सदस्यों से प्रार्थना है कि वो अपने बच्चों के विवाह के लिए जन्मकुण्डली का मिलान न कराएँ। इस कुप्रथा का जितना जल्दी हो सके मिटाने में हमारा सहयोग दें ताकि यह कुप्रथा आपकी आने वाली पीड़ियों को परेशान न कर सके।

# जन्मदिन मनायें – पेड़ लगाकर

सतयुग, त्रेता व द्वापर में लोग अक्सर बीमार नहीं होते थे। पूरे राज्य में कोई एक या दो ही वैद्य होते थे, वो भी युद्धमें घायल व प्राकृतिक आपदासे ग्रसित लोगों के उपचार के लिये। शारीरिक व मानसिक स्वस्थता का कारण केवल वनों की अधिकता ही था। ज्यों – ज्यों कलियुग बढ़ता गया, वन कटते गये, जन बढ़ते गये, पर्यावरण का संतुलन बिगड़ता गया।

वृक्ष मानव के सबसे बड़े हितैषी हैं। वृक्षों के कटने से मानव की सबसे बड़ी आवश्यकता, जल व वायु दोनों प्रदूषित हो गये। आज हवाओं में भी जहर है । जल भी उबाल कर पीना पड़ रहा है। मानव ने वृक्षों पर नहीं बल्कि अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारी है। विश्व स्तरीय समस्याओंमें सबसे बढ़कर समस्या, इस समय हमारे लिये, पर्यावरण का प्रदूषित होना है। आतंकवाद व भ्रष्टाचार इसके बाद की समस्याएँ हैं। इसलिये सबसे पहले हम सब को पर्यावरणकी रक्षा व स्वच्छता पर ध्यान देना चाहिये। यदि इस तरफ जल्दी ध्यान नहीं दिया गया तो वह दिन दूर नहीं, जब खुली हवा में श्वांस लेना भी हमारे लिये अभिषाप बन जायेगा। कभी समय था, इस देश में दूध भी नहीं बिकता था और आज पानी भी बिकता है। एक समय ऐसा आयेगा जब पानी की तरह स्वच्छ हवा भी बंद बोतलों में बिकने लगेगी। अपने खून से पैदा संतान भी हमारा उतना भला नहीं कर सकती, जितना कि वृक्ष करते हैं। संतान के बिना तो हम जी सकते हैं, लेकिन वृक्षों के बिना नहीं जी सकते। संतान तो भले की जगह बुरा भी कर सकती है, परन्तु वृक्षों से कभी किसी का बुरा नहीं हो सकता। सदा भला ही होगा। संतान के पालन पोषण में तो बहुत खर्च होता है, परन्तु वृक्षों के लगाने व पालन में बहुत थोड़ा खर्च होता है। वृक्षों की सेवा लोक व परलोक दोनों में सुखदाई होती है। वृक्षों की सेवा '**मेवा ही मेवा।**'

हम अपना व बच्चों का जन्मदिन मनाकर दीर्घायु की कामना करते हैं। आईये अबकी बार अपना व बच्चों का जन्मदिन अपने हाथोंसे एक वृक्ष का रोपण करके मनायें। दीर्घायु की कामना एक वृक्ष को जीवन

देकर करें।

शायद आपके सामने समस्या आये कि वृक्षारोपण कहाँ करें। यदि आंगन में जगह हो तो सबसे अच्छा, नहीं तो रास्ते के किनारे, किसी पार्क में, नदी नहर के किनारे, पाठशाला में, धर्मशाला में, नई कॉलोनियों में सड़क के दोनों तरफ, खेल के मैदान के चारों तरफ, बस्तियों में, गाँव में, खेतों में या जगत् में कहीं भी जगह मिले। स्थान के अनुरुप ही छोटे – बड़े आकार वाले वृक्षों को लगाना चाहिये, जिससे कोई विवाद न हो।

नहीं तो आप हमारे यहाँ गिरिराज गोवर्धन के चारों तरफ वृक्ष लगवा सकते हैं। जो अपने नाम से वृक्ष लगवाना चाहे, वह यहाँ माली से मिलकर वृक्ष के लगवाने व उसकी सुरक्षा व पालन पोषण का खर्च देकर पुण्य के भागी बनें। आईये इस कार्य को आज ही करें, कल तो देर हो जायेगी।

**हमारे जन्मदिन के साथ, एक वृक्ष के जीवन की शुरूआत ।**

## कुण्डलिया

**अवसर दुर्लभ साज है, पाइ भूलि जनि खोय ।**
**भोजन पंगत चूक सों, साधू भूखो सोय ।।**
**साधू भूखो सोय, लगावै दोष करम को ।**
**आलसि की यह रीति, न नाशै बुद्धि भरम को ।।**
**करुण दास कह कर्महीन, सब छाड़ै कल पर ।**
**कर्मठ करै न देरि, मिलै जब जब कोइ अवसर ।।**

# दुःख का कारण कौन?

जीवन में विभिन्न प्रकार की स्थितियाँ आती हैं। कभी-कभी परिस्थितियों से हमें कष्ट उठाना पड़ता है। अपने भी पराये जैसा व्यवहार करने लगते हैं। जिस व्यक्ति पर हमें अटूट विश्वास होता है वह भी दुश्मन बन जाता है। इससे हम दुःखी, निराश, हताश, उद्विग्न व विशादग्रस्त हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में हम अपना संयम खो बैठते हैं। वह कर बैठते हैं जो नहीं करना चाहिये। फिर बाद में पछतावा भी करते हैं। कई बार तो अपने किये पर जीवन भर पछताना पड़ता है।

ऐसी परिस्थितयों में सबसे पहले हमें यह सोचना चाहिये कि किसी भी घटना के लिये किसी को दोष देना अनुचित है। आप विश्वास कीजिये दुःख का कारण कोई दूसरा नहीं है, स्वयं हमारा प्रारब्ध (पूर्वकृत कर्म) ही है। यदि डाकिया पत्र के द्वारा दुःखद समाचार देता है तो क्या पत्र का दोष है? या फिर संदेशवाहक डाकिये का? आप किसको दोष देंगे, किस पर क्रोध करेंगे, किसको बुरा-भला कहेंगे, किसकी निंदा करेंगे? यदि आप पत्र देने वाले डाकिये पर क्रोध करेंगे तो आपको जरुर किसी मनोवैज्ञानिक चिकित्सक को दिखाने की आवश्यकता है या फिर किसी पागल खाने में भर्ती होने की आवश्यकता है।

आपके जीवन में कोई भी दुःख किसी भी निमित्त से आया है, निमित्त को दोषी ठहराना अनुचित है। किसी प्रकार की भी नकरात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करना नादानी है। इससे तो परिस्थिति ओर भी अधिक बिगड़ सकती है। दुःख दोगुना हो जायेगा। इसके जिम्मदोर आप स्वयं होंगे।

यदि आप थोड़े भी समझदार हैं, थोड़ी सी भी सुमति आपके पास है तो आप दुःख की घड़ी में अपना धैर्य बनाये रखेंगे। अतः अपनी तरफ से कोई भी नकरात्मक प्रतिक्रिया किसी भी प्रकार व्यक्त न होने दें। ऐसा करने पर दुःख बढ़ेगा नहीं। यदि आप शास्त्रों पर विश्वास करते हैं, भगवान् के मंगलमय विधान पर विश्वास करते हैं तो आपके लिये दुःख से छूटने का रास्ता ओर भी आसान हो जायेगा।

उस समय दुःख का निमित्त बने व्यक्ति के प्रति कुभाव का परित्याग करके धैर्य पूर्वक ठंडे दिमाग से यह सोचें कि यह दुःख का निमित्त अवश्य है, लेकिन दुःख का मूल कारण नहीं। दुःख का मूल कारण तो मेरा अपना ही प्रारब्ध है और यह दुःखद प्रारब्ध बना मेरे ही पूर्व जन्म के कर्मों से। मंगलमय प्रभु के मंगलमय विधान से ही मेरी पाप राशी समाप्त करने के लिये यह दुःख आया है। इसलिये इस दुःख को भगवान् का प्रसाद समझकर प्रसन्नता पूर्वक अंगीकार कर लेना चाहिये और भविष्य में कभी कोई पाप न करने की इस दुःख से प्रेरणा लेनी चाहिये।

कर्म सभी को निश्चित रूप से भोगना पड़ता है –

**कर्म प्रधान विश्व करि राखा,जो जस करहीं सो तस फल चाखा ।**

विश्व की रचना जीव के समष्टि व व्यष्टि कर्मानुसार हुई है। जो जैसा करता है सो वैसा फल पाता है।

**जैसी करनी वैसा फल, आज नहीं तो निश्चय कल ।**

मनुष्य को सुख – दुःख देने वाला प्रारब्ध स्वयं उसी के पूर्वकृत कर्मों का परिणाम है। मनुष्य स्वयं ही अपने निज दुःख का कारण है। शरीर मिलने से पहले ही प्रारब्ध बनता है।

**प्रारब्ध पहले रच्यो, पीछे रच्यो शरीर ।**

हमारे जीवन में सुख व दुःख प्रारब्ध का ही खेल है जो हमें खेलना ही पड़ेगा। यदि कभी किसी के प्रति मन में रोष आ जाये तो रामायण की ये चौपाई जरूर मन – ही – मन दोहरानी चाहिये –

**कोउ न काहु सुख दुख कर दाता ।**
**निज कृत करम भोग सब भ्राता ।।**

निज कृत कर्म ही दुःख का मूल कारण होता है, दूसरा कोई नहीं। दूसरा तो केवल संदेशवाहक की तरह निमित्त मात्र है। निमित्त को दोष देकर रोष करने से तो एक ओर नया अपराध बन जायेगा, जो भविष्य में दुःखद प्रारब्ध बनकर फलोन्मुख होगा। जब हम दूसरे की तरफ अंगुली उठाते हैं तो उसी समय तीन अंगुलियाँ हमारी तरफ अपने आप हो जाती हैं, भले ही हम उनको अंगुठे से दबा लें। तीन अंगुलियाँ यही इशारा

करती हैं कि मूल में दोषी तुम स्वयं हो।

बुरा प्रारब्ध दुःख अवश्य देता है लेकिन दुःखी होना या न होना हमारे हाथ में ही रहता है। प्रारब्ध दुःखी कर ही नहीं सकता यदि सर्वशुभचिंतक भगवान् के प्रत्येक विधान को पूर्ण सत्यता के साथ विश्वासपूर्वक मंगलमय मानकर स्वीकार कर लिया जाये तो। भगवान् का कोई भी विधान, चाहे वह देखने में महाभयानक, हृदयविदारक क्यों न दिखाई दे, चाहे चारों ओर महाविनाश का तांडव दृष्टिगोचर हो रहा हो विश्वास कीजिये उससे हमारा अमंगल कभी भी नहीं हो सकता। जो भी हो रहा है हमारे मंगल के लिये ही हो रहा है और सर्वसुहृद भगवान् के विधान से हो रहा है। इस सच्चाई को हृदय जितना स्वीकार करता चला जाएगा उतनी मात्रा में दुःख का असर कम होता चला जाएगा। जिस प्रकार रोग का संक्रमण (Infection) कमजोर शरीर पर अधिक होता है, उसी प्रकार दुःख का प्रभाव उस पर अधिक पड़ता है जिसका विश्वास कमजोर हो।

आपने पढ़ा या सुना होगा मीरा, नरसी जैसे भक्तों पर दुःख, विपत्तियाँ, प्रतिकूल परिस्थितियाँ कम नहीं आई थी लेकिन ये जीवन भर नाचते – गाते ही रहे। दुःख तो आए लेकिन दुःखी नहीं कर सके।

**रग रग में मेरा राम इस कदर बस गया,**
**दुःख भी दुःखी हो गया मैं कहाँ फस गया।**
**हर बार नये रूप में दुःख आया मेरे पास,**
**मेरी हँसी को देखकर वो हो गया उदास।**
**हर बार उसको देखकर मैं यूँ ही हँस गया,**
**दुःख भी दुःखी हो गया मैं कहाँ फँस गया।।**
**एक बार सुख के रूप में भरमाने आ गया,**
**एक बार हँसा उमर भर रूलाने आ गया।**

**मस्ती न मेरी कम हुई चाहे वो डस गया,**
**दुःख भी दुःखी हो गया मैं कहाँ फँस गया।।**
**जब भी कभी रूलाने को दुख आया सामने,**
**झट आ गये घनश्याम लगे मुझको थामने ।**
**ऐसा है मेरा श्याम सारे दुख को ग्रस गया,**
**दुःख भी दुःखी हो गया मैं कहाँ फँस गया।।**
**जब जब भी करुणदास राग छेड़ने लगा,**
**तब तब दुःखों का दावानल घेरने लगा**
**मेरे श्याम की कृपा का तभी जल बरस गया**
**दुःख भी दुःखी हो गया मैं कहाँ फँस गया ।।**

इसके विपरीत ऐसे भी नासमझ हैं जो थोड़ी सी विपरीत परिस्थिति में भी दुःखी होकर रोने लग जाते हैं। हमने ऐसे भी कई देखे जो बिना दुःख के भी दुःखी रहते हैं, दुःखी रहना उनका स्वभाव हो गया है। बिना कारण दूसरों से ईर्ष्या करना, दूसरे के सुख को देखकर डाह करना। एक माता को तो मैंने इसी बात पर दुःखी होते देखा कि उनके बहू-बेटे की आपस में इतनी क्यों बनती है। अधिकांश लोग दूसरे की तरक्की देख -देखकर दुःखी होते रहते हैं। ऐसे लोगों की अधिकता ही इस समाज की विडम्बना है। ढूंढों एक, मिलेंगे हजार। अधिकांश लोग अपने दूषित स्वभाव के कारण दुःखी होते रहते हैं। दुःख का दूसरा कारण है व्यक्ति का दूषित स्वभाव, उसकी गलत धारणाएँ, उसकी नकरात्मक सोच। व्यक्ति का प्रारब्ध व स्वभाव ही दुःख का मूल कारण है।

**इस दुनियामें आयके दुःखसे बचा ना कोय ।**
**ज्ञानी काटे ज्ञान से मूर्ख काटे रोय ।।**

दुःख तो आयेंगे ही लेकिन दुःखी होने से हम बच सकते हैं। इसका एकमात्र उपाय है 'सत्संग' क्योंकि सत्संग के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती।

**विवेकी सदा सुखी, अविवेकी सदा दुःखी।**

# सत्संग के रूप में आये कुसंग से बचें

विश्व में प्राय: लोग किसी न किसी धर्म–सम्प्रदाय से जुड़े हुए हैं, यह बहुत खुशी की बात है। मैंने धर्म–सम्प्रदायों की जानकारी के लिये बहुत से ग्रन्थ पढ़े, बहुत–से धर्मगुरुओं व उनके अनुयायियों के विचार भी सुने। जहाँ तक मैंने देखा, सुना व समझा प्राय: सभी धर्म–सम्प्रदायों में जीव के सुधार व उद्धार के लिये पर्याप्त सामग्री है। मेरा ऐसा विचार है कि किसी भी धर्म–सम्प्रदाय के अनुसार अपना जीवन बना लेने से जीव संसार बंधन से छूट कर अपना उद्धार कर सकता है। मेरा यह विचार कहाँ तक सही है, ये तो ठीक–ठीक भगवान् ही जानें लेकिन मेरा इस विचार पर दृढ़ विश्वास है। मुझे किसी भी धर्म– सम्प्रदाय से कोई शिकायत नहीं है।

यदि कोई शिकायत है तो धर्म के उन ठेकेदारों व प्रचारकों से जो धर्म का मर्म जाने बिना ही तोड़–मरोड़ कर अपनी मति अनुसार धर्म की परिभाषा करने लगते हैं। मैंने अधिकतर लोगों को देखा जो धर्म से स्वयं न जुड़कर केवल अपने अभिमान को ही जोड़े रखते हैं। ऐसे लोगों की शक्ति धर्मानुसार चलने में नहीं बल्कि दूसरों धर्मों को कोसने में ही लगी रहती है।

सतयुग, त्रेता व द्वापर तक धर्म और अधर्म (देवों–असुरों) के बीच लड़ाई होती थी, अंत में धर्म की जीत होती थी। लेकिन इस कलियुग में धर्म–सम्प्रदायों की परस्पर लड़ाई हो रही है। कहीं अस्त्र–शस्त्रों से तो कहीं वाक् अस्त्रों से जुबानी युद्ध चल रहा है, अधर्म दूर खड़ा तमाशा देख रहा है। आज धर्म के ठेकेदार व प्रचारक नास्तिक मत का खण्डन न करके प्राय: दूसरे धर्म–सम्प्रदायों का ही खण्डन करते देखे जाते हैं। ऐसे धर्मान्ध लोग प्रवचन कम भाषण अधिक देते हैं। इन कट्टरपंथियों की लेखनी भी कट्टरता के ही तीर छोड़ती है। चाहे इनके व्याख्यान सुन के देखें, चाहे इनकी लिखी पुस्तकें पढ़ के देखें दोनों में ही ये दूसरे धर्म–सम्प्रदायों के प्रति ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार वश विद्रोह व निन्दा की ही आग उगलते हैं क्योंकि जो भीतर होगा वही तो बाहर आयेगा।

जो जितना दूसरों के मत का खण्डन कर सकता है इस कलियुग

में वह उतना ही बड़ा गुणी कहलाता है। कलियुग में अधिकतर प्रचारक भक्ति, भजन, बंदगी की सीख न देकर अपने अनुयायियों को केवल परद्रोह ही सिखाते हैं। दूसरों के सम्प्रदाय की निन्दा कर-करके लोगों के मनों में दूसरों के प्रति द्वेष की अग्नि भड़काते हैं। अपने मत को ही सही व सबसे ऊँचा बताकर अपने अनुयायियों के मनों में केवल अहंकार को ही बढ़ावा देते हैं। मूल ग्रंथों के सुवचनों को तोड़-मरोड़कर मनमाना अर्थ करके सुनाते हैं। अपने भाषणों में दूसरे पंथ, ग्रंथ व संत-गुरुओं में दोष बताकर उनके प्रति हीन भावना भर देते हैं, भेद-भाव सिखा देते हैं।

जो नास्तिक बनकर अधर्ममय आचरण करते हैं, अभक्ष्य का भक्षण करते हैं उनकी बुराई तो ये लोग कम करते हैं, दूसरे सम्प्रदायों की आराधना, पूजा-पद्धति, भावना की निंदा अधिक करते हैं। मानों इन लोगों ने दूसरे धर्म-सम्प्रदायों को मानने वालों की भावना को ठेस पहुँचाने का ठेका ले रखा हो। ऐसे धर्मान्ध, कट्टरपंथी अपने सम्पर्क में आने वालों को भक्त कम द्रोही अधिक बनाकर केवल अपने अनुयायियों के रूप में द्रोहियों की ही सेना इकट्ठी करते हैं। दुनिया में ऐसे धर्मान्ध लोगों की कमी नहीं है, ऐसे कट्टरपंथी प्रायः कम या अधिक मात्रा में सभी धर्मों में मिल जायेंगे। ऐसे लोगों से बचने की बहुत आवश्यकता है। अधिकतर स्थानों में सत्संग के रूप में कुसंग ही अधिक होता है। उनके शिष्य अनुयायियों को देखकर ही पता चल जाता है कि ये सत्संग के नाम पर कुसंग ही कर रहे हैं। कितने लोगों ने तो धर्म को धंधा तक बना रखा है अपनी गृहस्थी पालने के लिये। कितनों ने तो अपने शिष्य, अनुयायियों को बंधक बना रखा है। वे अपने शिष्य-अनुयायियों को दूसरे संत-महापुरुषों के पास तक नहीं जाने देते। यदि कोई श्रद्धावश दूसरे संतों के पास चला जाता है तो पता लगने पर उनको डांटा जाता है।

आप भी कहीं सत्संग के नाम पर कुसंग तो नहीं कर रहे हैं। यदि आपको ऐसा लग रहा हो तो निःसंकोच वहाँ से हट जाएँ। आपको कोई अपराध नहीं पड़ेगा। किसी सच्चे महापुरुष की शरणागत होकर श्रद्धापूर्वक संग करके अपना उद्धार करना चाहिये। जिनका संग करने से आपमें दैवी गुण बढ़ रहे हों, आप उदारवादी बन रहे हों, भगवद् विश्वास

दृढ़ हो रहा हो, आपके स्वभाव में दीनता व सब जीवों के प्रति समता का भाव बढ़ रहा हो तो आपके लिये उस महापुरुष का संग ही सच्चा सत्संग है।

पहले तो धर्मान्ध व कट्टरपंथियों के अहंकार व स्वार्थ से प्रेरित इन बातों को देख व सुनकर बहुत दुःख होता था। बाद में समझ में आया कि किसी का कोई दोष नहीं, यह तो कलियुग का धर्म है। जैसे सतयुग में सतयुग का, त्रेता में त्रेता का, द्वापर में द्वापर का प्रभाव था ऐसे ही अब कलियुग में सभी स्थानों पर कलियुग तो रहेगा ही। इसलिये '**कलि का धर्म न दोष किसी का**' मानकर मन की उथल-पुथल मिट जाती है।

सत्संग में रूप में आये कुसंग से केवल भगवद् कृपा द्वारा ही बचा जा सकता है।

**बिन सतसंग विवेक न होई, राम कृपा बिन सुलभ न सोई।**

शरणागत व दीन भक्तों की तो भगवान् प्रतिक्षण ऐसे संभाल करते हैं जैसे माँ अपने पुत्र की।

मैं एक बार फिर कहुँगा कि कोई भी धर्म- सम्प्रदाय गलत नहीं है, सभी अमृत के समान हैं जो जीव को जन्म-मरण के बंधन से छुड़ाकर अमरत्व प्रदान करते हैं। कुछ स्वार्थी, अहंकारी तत्त्व धर्ममय अमृत में अहंकार, ईर्ष्या, परद्रोह आदि विष मिलाकर भोले-भाले लोगों को परसकर उनको भी अपने जैसा ईर्ष्यालु, द्रोही बना रहे हैं। ऐसे लोगों से सबको भगवान् बचाये।

**कलियुग देखि अचंभो आवै।**
**धरम अधरम की नहि लड़ाई, धरम धरम पै तीर चलावै॥**
**नास्तिक मत को करत न खंडन, धरम धरम पै दोष लगावै।**
**धरम मरम नहिं जानत तोऊ, व्यास पीठ बकता बनि जावै॥**
**जे पर मत को खंडनकरता, सोइ कलियुग गुनवंत कहावै।**
**भगति भजन की सीख न देवें, लोगन कूँ परद्रोह सिखावै॥**

धरम दूसरे की निंदा करि, मन में द्वेष अगनि भड़कावै ।
पंथ हमारौ सबसों ऊँचो, कहि कहि मन अभिमान बढ़ावै ।।
तोड़ मोड़ सद्ग्रन्थ वचन सब, मनमाना करि अरथ बतावै ।
पंथ ग्रंथ अरु संत गुरुन में, केवल भेद भाव दिखरावै ।।
करुणदास दुर्मति लखि जग की, अब तो बात यही मन आवै ।
कलि को धरम न दोष काउ को, इन सों केवल राम बचावै ।।

X X X

काहे अमृत में विष घोलै ।
गुण गावत निज सम्प्रदाय के, पर सुचि मत कूँ मंदा बोलै ।।
रे परनिंदक! सन्यौ पंक अघ, चल निज पथ पर काहे डोलै ।
ठेस लगावै भगत हृदय में, काहे महद पाप ले मोलै ।।
आपुन दोष न सूझै तोहे, पर के दोष सदा ही तोलै ।
करुण दास तजि मोह कुसंगा, सत्सँग करि मन मैला धोलै ।।

मनवा छोड़ जगत की बात ।
नर तन दुर्लभ समय गँवावै, नहिं हरि नाम सुहात ।।
कुंजर तो अपनी गति चालै, कूकर भूँसत जात ।
लाख कहै कोउ रुके न तबहू, मेघा जल बरसात ।।
कटू वचन बहु सुनी विभीषण, पुनि सहि रावण लात ।
करुण दास पै टेक न छॉड़ी, मिले राम साच्छात ।।

# 72 घंटे तक रहता है गुस्से का असर

क्रोध मनुष्य को दो प्रकार से आता है। एक तो बिना कोई कारण अपने ही संस्कार वश जैसे ईर्ष्या, द्वेष, वैचारिक कट्टरता, गलत सोच, नकरात्मक विचार आदि। दूसरा, जब कोई बाह्य कारण होता है तब क्रोध आता है। क्रोध से बचने के लिए क्रोध से होने वाली हानियों के बारे में जानना बहुत जरूरी है क्योंकि जब तक हम किसी वस्तु के नुकसान के बारे में नहीं जानेंगे तब तक उससे बचने की कोशिश नहीं करेंगे।

जब मनुष्य को क्रोध आता है तो 80 से भी ज्यादा स्नायुओं में तनाव बढ़ता है। मस्तिष्क को खून पहुँचाने वाली सूक्ष्म नलिकाएँ जो आँखों से दिखाई भी नहीं देती, उन पर ज्यादा बुरा असर होता है। क्रोध से रोग प्रतिकारक शक्ति भी कम हो जाती है और ब्लड प्रैशर बढ़ जाता है। क्रोध करने से नाड़ी तंत्र बुरी तरह से प्रभावित हो जाता है। नाड़ी तन्त्र पर जो बुरा असर होता है उसको पूरी तरह ठीक होने में 7 से लेकर 15 दिन तक का समय लग जाता है। एक बार क्रोध करने से उसका असर मन पर 72 घंटे तक रहता है।

श्रीमद्भागवत गीता में क्रोध का वर्णन महाशत्रु के रूप में किया गया है –

**काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः ।**
**महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।।**

रजोगुण से उत्पन्न हुआ काम (कामना) ही क्रोध है। यह बहुत खाने वाला और बड़ा पापी है। इसको तू इस विषय में बैरी जान।

क्रोध की जड़े बहुत मजबूत और सूक्ष्म हैं। क्रोध का बीज देहात्म बुद्धि है। क्रोधी का दिल, दिमाग ही नहीं बल्कि पूरा शरीर क्रोध से बुरी तरह से प्रभावित होता है। शरीर के हर अंग को वह प्रभावित करता है। क्रोध चेहरे की आकृति बिगाड़ देता है। ऐसे चेहरे को देखते ही डर लगने लगता है। उस समय आँखें लाल हो जाती हैं, नथूनें फूलने लगते हैं, होंठ फड़फड़ाने लगते हैं, जुबान लड़खड़ाने लग जाती है, बोल अमर्यादित हो जाते हैं। क्रोधी इतनी जोर से बोलने लगता है मानो सामने वाले को ऊँचा

सुनाई देता हो। बात करते समय बार–बार हाथ उठाकर अंगुली दिखाकर बात करता है। पाँव पटकने लगता है, स्वांस फूलने लग जाती है, रौंगटे खड़े हो जाते हैं, चेहरा भयानक हो जाता है, दिमाग का संतुलन बिगड़ जाता है। क्रोध करते समय यदि कुछ काम कर रहे हैं तो उसे तेजी से करने लगेंगे। यदि कुछ सामान रखते हैं तो जोर से पटकते हैं। चलेंगे भी तो तेज रफतार से चलेंगे। यदि गाड़ी चला रहे हैं तो होर्न बार–बार व जोर से दबाएँगे। कईं लोग तो क्रोध में वस्तुओं को फेंकने, तोड़ने व अपने आप को भी पीटने लग जाते हैं। क्रोधावेश कुछ समय के लिए पूरा ही पागल बना देता है।

कोई भी विकार जब मन में प्रवेश करता है उस समय मनुष्य विवेक से कुछ सोचता जरूर है, जैसे लोभ आता है तो सोचता है कि चोरी ठगी करूँ या न करूँ। लेकिन क्रोध तो विवेक शक्ति को ही नष्ट कर देता है। गीता में भगवान् ने कहा है 'क्रोध मनुष्य की बुद्धि का नाश कर देता है।'

**क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।**
**स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।**

क्रोध से अत्यंत मूढ़ भाव उत्पन्न हो जाता है। मूढ़ भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है और स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञान शक्ति का नाश हो जाता है। बुद्धि का नाश हो जाने से वह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।

आज लाखों लोग जेल में सजा भोग रहे हैं, इसका ज्यादातार कारण क्रोध ही है।

**क्रोध का निवारण –** क्रोध का कारण हमारी ही कमजोरी है, न कि दूसरा। विवेक व सकरात्मक चिंतन से उन कमजोरियों को मिटाएँ। क्रोध से कभी लाभ नहीं होता, हानि–ही–हानि होती है। क्रोधी व्यक्ति सबकी नजरों से गिर जाता है। क्रोधी के कोई पास नहीं आना चाहता। वह अकेला रहने पर मजबूर हो जाता है। जहाँ क्रोधी रहता है वहाँ हमेशा कलह–ही–कलह होती है। क्रोध करके हर बार पछताना पड़ता है। ऐसा

विवेकपूर्ण विचारकर ही क्रोध को त्याग देना चाहिये।

क्रोध आता है कामना में विघ्न पड़ने पर। जरा सोचो! क्या आज तक किसी की सारी कामनाएँ पूर्ण हुई हैं? कौन सी कामना पूर्ण होगी और कौन सी अधूरी रहेगी, यह प्रारब्ध पर निर्भर करता है न कि स्वयं या दूसरे की इच्छा पर। जब प्रारब्ध के कारण ही कामनाओं में विघ्न पड़ता है, फिर क्रोध दूसरों पर क्यों? प्रारब्ध हमारे पूर्वकृत कर्मों के अनुसार कर्म नियन्ता का विधान है। इसको चुपचाप सहन कर लेना चाहिए। सुख-दुःख का कारण प्रारब्ध है, दूसरे लोग तो केवल निमित्त हैं। जिस निमित्त से प्रारब्ध का फल दुःख आया, उस निमित्त पर क्रोध क्यों? यदि डाकिये के दिए पत्र में दुःखदायी अशुभ समाचार हो, क्या दुःख का निमित्त बने डाकिये पर क्रोध करने की मूर्खता करोगे?

**सुख दुःख आवत जात हैं, भाग्यन के अनुसार।**
**मैं तू ओर निमित्त हैं, नचवावत करतार।**
**कर्म सँभलि यदि न कियो, फिर पाछे पछताये।**
**आज कर्म कल भाग्य है, संत कहे समझाये।**
**काल किया सो आज है, आज किया कल होय।**
**फसल पके पैं काटिये, बीज खेत जो बोय।**
**सोचि समझि नर कर्म कर, पाछे कबहु न सोच।**
**बिना विचारे जे करैं, कर्म खाये फिर नोच।**
**कर्मन सों सुख होत है, कर्मन सो दुख होय।**
**कर्मन सों हरि पाइये, करुण दास कहे तोय।**

# उपदेशामृत

1. 'सहनशक्ति' सद्‌गुणों की जननी है। जो सह गये वो प्रभु चरणों में रह गये, यदि कुछ कह गये तो समझो माया में बह गये। सहनशक्ति का न होना मानो अवगुणों को निमन्त्रण देना है।

2. जीने के लिये जितना जरूरी भोजन है, मृत्यु के लिये उतना ही जरूरी भजन है।

3. वासना, स्वार्थ और अंहकार को त्याग कर कुछ भी करो, सब धर्म है।

4. बहुत से अनियमित भजन की अपेक्षा थोड़ा सा नियमित भजन श्रेष्ठकर है।

5. भजन करना अत्यन्त कठिन है। इससे भी कठिन है भजन की पूँजी को निष्कामता की तिजोरी में संभाल कर रखना।

6. पुण्य करना आसान है, पापों को त्यागना कठिन है। पुण्य करने वाला महान है, इससे भी महान है पापों को त्यागने वाला।

7. कुसंग त्यागने पर ही सत्संग का स्थाई असर होता है।

8. संत की वाणी यदि शास्त्रसम्मत है तो संत के प्रति श्रद्धा न होने पर भी उनकी वाणी पर अपने समस्त जीवन को समर्पित कर देना चाहिये, पूर्ण लाभ होगा।

9. जीवन में नम (नम्रता), नाम (हरिनाम) और नेम (नियम) आ जाए तो समझो इसी जन्म में नैया पार। ये तीनों नम, नाम और नेम सत्संग से ही जीवन में आते हैं।

10. संसार से मेरापन हट जाए तो भगवान् से मेरापन स्वत: होने लग जाता है। इसके बाद भगवत् प्राप्ति के लिए साधना करनी नहीं पड़ेगी स्वयं होती रहेगी। जब तक भगवत्प्राप्ति नहीं होगी, तब तक वो चैन से नहीं बैठ सकता।

11. (क)हमारा लक्ष्य – 'भगवत्प्रेम प्राप्ति'

(ख) हमारा पथ – 'पापों से बचकर कर्त्तव्य पालन करते हुए निष्काम भाव से हरि नाम – जप कीर्तन, चिंतन एवं प्रार्थना'

(ग) प्रधान विघ्न – 'सांसारिक कामनाएँ'

(घ) हमारे साथी – 'इस पथ के पथिक'

(ङ) जल – 'संत वाणी'

(च)भोजन – 'संत महापुरुषों का संग'

12. भजन करने से ही भजन में रुचि होती है।

13. नाम – जप बिना श्रद्धा, विश्वास के भी फलदायी होता है। श्रद्धा, विश्वास पूर्वक मन लगाकर भजन करना बहुत अच्छा है। यदि ऐसा न हो सके तो भी भजन तो करना ही चाहिए। देर – सबेर लक्ष्य तक पहुँच ही जाओगे।

14. भजन निष्ठ साधक का संग, भजन कराता है।

15. संत कृपा से भजन सहज ही में होने लगता है।

16. नाम – जप के लिए माला बहुत उपयोगी है।

17. लोग भजन तो करते हैं लेकिन नियम से नहीं करते। बिना नियम से किया गया भजन जीवन में आए उतार – चढ़ाव की भूलभलैया में छूट जाता है।

18. नाम – जप यदि माला का मनका है तो नियम उसका धागा है। धागा टूट जाने पर माला, माला नहीं रहेगी। इसी प्रकार नियम टूट गया तो भजन छूट जायेगा।

19. नेम से ही प्रेम प्रकट होता है। नियम पूर्वक भजन करने से ही भजन में रुचि बढ़ती है।

20. नियम करते जितना अधिक समय होता जाता है, उतनी नियम के प्रति दृढ़ निष्ठा होती चली जाती है।

21. नियम उन संत – महापुरुषों से लेना चाहिए जिनमें हमारी श्रद्धा हो क्योंकि हमारी श्रद्धा एवं संतों की कृपा (संकल्प शक्ति) हमारे भजन के नियम को दृढ़ता प्रदान करेगी।

22. भगवान् उस स्वप्न की तरह हैं, जो दिखता तो है पर देखा या दिखाया नहीं जा सकता अर्थात् न कोई पुरूषार्थ से देख सकता है और न किसी दूसरे को दिखा सकता है।

23. कल्याण केवल पुण्य – कर्म से नहीं होता, पुण्य – कर्म के साथ – साथ पाप – कर्म त्याग बहुत जरूरी है। पुण्य – कर्म से ज्यादा महिमा

पाप त्याग की है।

24. कोई भी शुभ-कर्म यदि हृदय में राग- द्वेष जगाये अथवा बढ़ाए, ऐसे शुभ-कर्म को त्यागकर राग-द्वेष से बचना चाहिये क्योंकि शुभ-कर्म करने से ज्यादा अच्छा है राग-द्वेष का त्याग।

25. सच बात तो यह है कि राग-द्वेष को बढ़ाने वाला कर्म केवल बाहर से ही शुभ दिखता है। वास्तव में वो शुभ दिखने पर भी अशुभ ही हुआ करता है।

26. परद्रोही का लोक और परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं। कल्याण की इच्छा वालों के लिये भूल कर भी किसी भी प्राणी से द्रोह नहीं करना चाहिए।

27. हृदय में बैठे परद्रोह रूपी दुश्मन को सहनशक्ति रूपी तलवार से मार देना चाहिए।

28. कईं जन्मों के पुण्य के परिणाम स्वरूप नाम में रूचि होती है। अल्प पुण्यवान व्यक्ति को नाम जप में विश्वास नहीं होता ।

29. यदि किसी की नाम जप में निष्ठा है तो उसने पूर्व जन्मों में बहुत ज्यादा पुण्य किए होंगे या उसके पीछे किसी महापुरूष का हाथ है। इन दोनों में से कोई एक कारण के बिना नाम जप में निष्ठा नहीं होती।

30. पञ्चम पुरूषार्थ भगवत् प्रेम, मुक्ति से भी दुर्लभ है, ये केवल चाहने से ही प्राप्त हो जाता है, लेकिन चाह हो अनन्य।

31. श्री भगवत्प्रेम पुरूषार्थ साध्य नहीं है, यह तो केवल कृपा साध्य है। भगवत्प्रेम तो किसी प्रेमी महापुरूष की कृपा से या फिर भगवत् कृपा से ही प्राप्त होता है।

32. कृपा दीन सेवक पर ही फलित होती है।

33. जब तक सांसारिक भोग मन को आकर्षित करते रहेंगे, तब तक मन मनमोहन के लिए आकर्षित नहीं होगा।

34. जब तक अन्त:करण संसार से उपराम नहीं हो जाता तब तक भगवत् मिलन की छटपटाहट नहीं जगती।

35. अपराधों से बचकर जितना ज्यादा नाम जप होगा, उतना

ही हृदय पवित्र होता जायेगा। फिर पवित्र हृदय में अनुराग का उदय होगा।

36. इसलिए साधक को चाहिए कि वह अपनी पूरी चतुराई, समझदारी व बुद्धि को अपराधों से बचने में व हरिनाम जप में लगा दे बाकि सब काम प्रभु कृपा से स्वत: बन जायेंगे।

37. चित्त की वृत्ति संसार में लग जाये तो आसक्ति, प्रभु में लग जाये तो भक्ति।

38. जो चित्त वृत्ति संसार में लग जाने से वासना बन जाती है, प्रभु में लग जाने से वही चित्त वृत्ति उपासना बन जाती है।

39. जो चित्त वृत्ति संसार में लग जाने से राग कहलाती है वही चित्त वृत्ति प्रभु में लग जाने से अनुराग बन जाती है।

40. जिस प्रकार ताले की चाबी एक ही होती है, बायें घुमा दो तो ताला बंद हो जाता है और दायें घुमा दो तो ताला खुल जाता है। इसी प्रकार मनरूपी चाबी को संसार की तरफ मोड़ दो तो बन्धन और प्रभु की तरफ लगा दो तो बन्धन से मुक्ति।

41. प्रभु का एक नाम मनमोहन भी है, वे मन को मोह लेते हैं। फिर हमारे मन को क्यों नहीं मोहते?

भगवान् पवित्र मन को मोहते हैं। यदि हमारा मन मनमोहन ने नहीं मोहा तो इसमें मनमोहन की निष्ठुरता नहीं है, बल्कि हमारी ही कमी है।

42. जितना मन पवित्र होता चला जायेगा उतना ही मनमोहन में लगता चला जाएगा।

43. यद्यपि धनवान होना, शरीर का स्वस्थ होना आदि-आदि सुख प्रारब्ध अनुसार मिलते हैं, फिर भी इन सुखों की प्राप्ति में जीव दिन-रात लगा हुआ है।

44. इसके विपरीत यदि कोई चाहे तो उसको इसी जन्म में प्रभु-प्राप्ति हो सकती है, लेकिन अभागा जीव प्रभु-प्राप्ति के लिए उतनी कोशिश नहीं करता जितनी सांसारिक नाशवान क्षणिक सुखों के लिए करता है जो कि उसके वश में नहीं है।

45. अज्ञानी जीव प्रारब्ध को पुरूषार्थ से पाना चाहता है और पुरूषार्थ को प्रारब्ध से।

46. शरीर को प्रारब्ध ने रचा है। प्रारब्ध ही शरीर का पोषण करता है और प्रारब्ध से ही शरीर का अन्त होता है।

47. इसलिए साधक अपने शरीर को प्रारब्ध पर और प्रारब्ध को प्रभु चरणों में समर्पित करके निश्चिन्तता पूर्वक समय को भजन में लगाए और अपने कर्त्तव्य कर्म भी करता रहे।

48. प्रारब्ध हमको सुख या दुःख देता है, लेकिन मन का सुखी या दुःखी होना स्वयं पर निर्भर करता है। इसलिए मानसिक शान्ति या अशान्ति प्रारब्ध का नहीं बल्कि हमारी मानसिकता का फल है।

49. बाह्य दुःख-सुख की परिस्थितयाँ हमारे प्रारब्ध का परिणाम है और मानसिक दुःख एवम् सुख हमारे विचारों का परिणाम है।

50. पापों का फल दुःख भोगने में व्यक्ति परतन्त्र है, दुःख न चाहने पर भी व्यक्ति को दुःख भोगना ही पड़ता है।

51. इसके विपरीत पुण्यों का फल भोगने में व्यक्ति स्वतन्त्र है। वो चाहे तो सुख आने पर उसका त्याग भी कर सकता है। त्याग की बड़ी महिमा है। त्याग साधना का एक बहुत बड़ा अंग है।

52. यदि आप प्रभु को पाना चाहते हैं तो पूर्ण निष्ठा से किसी संत महापुरूष के साथ जुड़ जायें, उन्हीं के कहे अनुसार जीवन यापन करें। संत कृपा से दुर्लभ वस्तु भी सुलभ हो जाएगी।

53. नाम-जप से भी ज्यादा महिमा नाम- संकीर्तन की है।

54. सूरदास जी के शब्दों में-

**जो सुख होत गोपालहि गाये।**
**जो नहीं होत किए जपतप ते,कोटिक तीर्थ नहाए।।**

कबीरदास जी के शब्दों में-

**कथा, कीर्तन कलि विषे, भवसागर की नाव ।**
**कहे कबीर ये जगत में, ना ही और उपाय ।।**

स्वयं भगवान् कहते हैं-

**नाहम् वसामि वैकुण्ठे योगिनाम हृदय न च ।**

मद्भक्तां यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।।

55. नाम जप, कीर्तन और लीला चिंतन बस इतना ही जीवन नैया को पार ले जाने के लिए काफी है।

56. बस जीभ से नाम जप कीर्तन और मन से कृष्ण लीलाओं का चिन्तन जितना ज्यादा हो सके। सावधानी पूर्वक पाप एवं अपराधों से बचते रहें।

57. द्वेष रहित क्रोध और धन की इच्छा रहित लोभ, परस्त्री पर पुरुष की इच्छा रहित काम, हमारी उपासना में बाधक नहीं बन सकता।

58. संसार को अपना मानो तो इतना मानो कि मेरे लिये कोई पराया नहीं। यदि पराया मानो तो इतना मानो कि यह शरीर भी अपना नहीं है। तब ही चित्त राग – द्वेष से बच सकेगा।

59. जो कुछ दिख रहा है वह सब भगवान् हैं और जो कुछ हो रहा है वह भगवान् की लीला है।

60. करने में सावधान, होने में प्रसन्नता। करने से पहले शास्त्र देखो और होने के बाद भगवत् लीला देखो।

61. प्रभु का प्रत्येक विधान हमारे लिए मंगलकारी होता है। चाहे दिखने पर अमंगलकारी क्यों न प्रतीत होता हो।

62. हमारे जीवन में प्रारब्ध वश या हरि इच्छा से जो भी हो रहा है, यदि हमें उसे पूर्णांश में सहर्ष स्वीकार कर लें तो आज ही हम भगवान् के और भगवान् हमारे हो जायेंगे।

63. दुनिया में जीना भी है और दुनिया से जाना भी है। इसलिए सत्संग के द्वारा इन दोनों को सीख लेना चाहिए।

64. जीने के लिए जितना जरूरी भोजन है जाने के लिए उतना ही जरूरी भजन है।

65. भोजन जीने के लिए और जीना जाने की तैयारी के लिए होता है।

66. पुण्य की अधिकता व सत्संग से लगन और लगन से भजन होता है।

67. धर्म-पूर्वक जीवन यापन करने वाले को एक दिन अवश्य वैराग्य होता है और अधर्म पूर्वक जीवन यापन करने वाले को कभी वैराग्य नहीं होता।

68. जो कभी किसी को क्षमा नहीं करता उसको भी भगवान् से क्षमा याचना करने का अधिकार नहीं।

69. यदि भगवान् से अपने अपराध क्षमा करवाना चाहते हो तो पहले स्वयं दूसरों के द्वारा किए गए अपने प्रति अपराधों को क्षमा करो। तभी भगवान् के यहाँ सुनवाई होगी।

70. डटकर उत्साह-पूर्वक साधना करते हुए भी आश्रय गुरू एवं गोविंद का ही रखें, नहीं तो पतन का डर है।

71. हम सद्गुरू तो चाहते हैं लेकिन सद्शिष्य बनना नहीं चाहते। सद्शिष्य बने बिना सद्गुरू से पूर्ण लाभ नहीं ले सकते।

72. सद्शिष्य ही सद्गुरू बन सकता है। जो सद्शिष्य नहीं बन सका वह भला सद्गुरू कैसे बन सकता है?

73. सद्शिष्य और सद्गुरू बाहर से भिन्न-भिन्न दिखने पर भी भीतर से अभिन्न होते हैं।

74. सद्गुरू को ढूँढने की कोशिश मत करो, बस सद्शिष्य बन जाओ।

**प्राणी अब तो चेत करो।**
**वृद्ध भयो धंधा नहिं छाँड़ै, क्यों बेमौत मरो।।**
**निस दिन चिंता घर जन धन की, जोरि संभारि धरो।**
**भूल गयो सँग कछु नहिं जावै, काहे जेब भरो।।**
**जनम मरन को फेर भयानक, यासों तनिक डरो।**
**करुणदास कह भक्ति भजन करि, भव सों वेगि तरो।।**

# इति शुभम्

जितने भी धर्म–सम्प्रदाय हैं वो सब किसी न किसी रूप में मेरी ही आराधना करते हैं। वे जिन–जिन रूपों में मेरी व्याख्या करते हैं मैं वह सब हूँ। मन्दिर, मस्जिद्, गुरुद्वारे व गिरिजाघर सब मेरी ही उपासना के पवित्र स्थल हैं। इन सबमें किसी न किसी रूप से मेरी ही आराधना होती है। मुस्लिम मेरे लिये रोज़ा व हिन्दू एकादशी रखते हैं। कोई मेरे लिये गीता, कोई कलमा पढ़ते हैं, कोई गुरुद्वारे में तो कोई मन्दिर में पाठ करते हैं। मेरे अनन्त नाम हैं जो समय–समय पर संतों के द्वारा इस संसार में प्रकट हुए हैं और होते रहेंगे। कोई हरि, राम व कृष्ण तो कोई अल्लाह, खुदा, कोई वाहेगुरु नाम जपता है।

जो मेरे सच्चे भक्त हैं वो मुझे किसी भी रूप में मानते हुए सभी धर्मों व सम्प्रदायों का सम्मान करें। अपने मार्ग को न छोड़ें, दूसरे मार्ग की निन्दा न करें। मैं सबमें हूँ, सब मुझमें हैं। सर्वत्र मेरी ही भावना करें। सबसे हिल–मिल कर रहें।

–इसी पुस्तक से